शोधादर्श

48

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

भ० महावीर स्वामी

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्रीमहावीर जी

आद्य सम्पादक : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
प्रधान सम्पादक : श्री अजित प्रसाद जैन
सह – सम्पादक : श्री रमा कान्त जैन

प्रकाशक :
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.
पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ– २२६ ००४

णाणं णरस्स सारं- सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श -४८

वीर निर्वाण संवत् २५२६ नवम्बर २००२ ई.

विषय क्रम

१.	गुरुगुण–कीर्तन : कविवर बनारसीदास	श्री रमा कान्त जैन	१
२.	मथुरा की नैगमेश मूर्तियाँ और कृष्ण जन्म	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	७
३.	सम्पादकीय : मंगलम् पुष्पदंताद्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्	श्री अजित प्रसाद जैन	११
४.	हमारी दुर्बलता और हीनता का कारण	श्री जमनालाल जैन	१८
५.	कर्मफलभोग : एक समीक्षा	समणी मंगलप्रज्ञा	२४
६.	पुण्यानुबंधी पुण्य	श्री मफतलाल मेहता	२६
७.	भक्तामर स्तोत्र	डॉ. शशि कान्त	३३
८.	वीर–जन्मस्थली कुण्डलपुर प्रकरण–एक विश्लेषण	श्री अजित प्रसाद जैन	३५
९.	चिंतन ओशो रजनीश का		४२
१०.	चिन्तनकण : अमृत मंथन	श्री सुखमाल चंद्र जैन	४३
११.	मंगल श्लोक पर एक विचार	जस्टिस एम. एल. जैन	४४
१२.	अर्जुन माली (नाटिका)	श्रीमती सुधा जिन्दल	४५
१३.	भगवान महावीर के चरणों में	श्री शान्तिलाल के. शहा	४८
१४.	आध्यात्मिक गीत	डॉ. महेन्द्रसागर प्रचण्डिया	४९

१५. सामयिक परिदृश्य : क्षणिकाएं	श्री रमा कान्त जैन	५०
१६. तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र. प्रगति प्रतिवेदन वर्ष २००१–२००२	श्री अजित प्रसाद जैन	५१
१७. समाचार विमर्श :	श्री अजित प्रसाद जैन	५५
महासभा अधिवेशन		
लब्धि समारोह		
साहित्य सत्कार :		५६
जन जन के महावीर; नियति द्वात्रिंशिका; वर्धमान महावीर स्मृति ग्रंथ; समग्र जैन चातुर्मास सूची; जीवन्धर चम्पू सौरभ; श्रावकाचार सौरभ; अप्पाणं शरणं तथा ओं श्रीमद्राजचन्द्र निर्वाण शताब्दी स्मारिका	श्री अजित प्रसाद जैन	
द्रोणगिरि–दर्शन; जैनयुग पुरुष; माँ; कवि एक रस अनेक; जैन सन्तों में बढ़ता शिथिलाचार– आवश्यक क्रियोद्धार; गल्प–गंगा; दोहा– दर्पण तथा स्मृति शेष नमन।	श्री रमा कान्त जैन	
१९. समाचार विविधा		६७
२०. अभिनन्दन		६८
२१. आभार		६९
२२. शोक संवेदन		७०
२३. शोधादर्श : पाठकों की दृष्टि में		७१
२४. अनुक्रमणिका		७८

मुद्रक – माहेश्वरी प्रिन्टर्स, लखनऊ

गुरुगुण–कीर्तन

कविवर बनारसीदास

तम में भटक रहे प्राणी को 'समयसार' दिनकर है।
हे बनारसीदास तुम्हारी रचना अजर अमर है।।१।।
शुभ्र पारलौकिकता पर जिनका जीवन निर्भर है।
हे बनारसीदास तुम्हारा जीवन अजर अमर है।।२।।

– श्री कल्याणकुमार जैन 'शशि', रामपुर

धन्य वही सद्दृष्टी मानव, मानवरत्न सुधाकर।
ललित कल्पना–कान्ति–कौमुदी जिनकी धवल विभाकर।।
जिनका जीवन काव्य सभी कुछ सचमुच आत्मरसी है।
वह अन्तर–दृष्टा रस–सृष्टा कविवर बनारसी है।।

– श्री वीरेन्द्र प्रसाद जैन, अलीगंज, एटा

तुम हिन्दी जग के वैभव हो, हो कविता–कामिनी सुभग कंत।
हो कवि कबीर से कवि फक्कड़, तुम तुलसी जैसे महा संत।।
कम नहीं किसी से तुलना में, कृतियां सुन्दर साहित्यकार।
पर दुख है तुमको भुला दिया साहित्य जगत ने किस प्रकार।।

– श्री अनूपचंद न्यायतीर्थ, जयपुर

धरती पर रह किया धरातल, तुमने ऊँचा निज जीवन का,
'अर्द्ध कथानक–समयसार' मिल; रहस्य कहते जन जीवन का।
हे अग्रज! तव चरित्र अद्भुत, कुछ लोकोत्तर विभु–जीवन सा,
सदियों बाद प्रणाम अनुज का; नये जागते नव जीवन सा।।

– श्री लक्ष्मीचंद्र 'सरोज', जावरा

जयपुर से प्रकाशित 'वीर–वाणी' के बनारसीदास विशेषांक (४.२.१९६३) से ऊपर उद्धृत चार काव्यांशों में जिन कविवर बनारसीदास का यशोगान हुआ है वह श्रीमालवंशी, बिहोलिआ गोत्री जैन धर्मानुयायी मूलदास के पौत्र और खरगसेन के पुत्र थे। उनका जन्म जौनपुर में संवत् १६४३ (ईस्वी सन् १५८६) की माघ शुक्ल एकादशी, रविवार को हुआ था। माता–पिता ने प्रारंभ में इनका नाम 'विक्रमाजीत' रक्खा था जिसे बाद में बनारस तीर्थयात्रा के दौरान पुजारी के कहने पर बदलकर 'बनारसीदास' कर दिया गया। अपने आत्मचरित 'अर्द्ध–कथानक' में बनारसीदास ने अपने जीवन के ५५ वर्षों का लेखा जोखा प्रस्तुत किया है। उससे विदित होता है कि आजीविका के लिये बनारसीदास ने अपनी कुल–रीति के अनुसार वणिक्–वृत्ति

अपनाई थी, किन्तु वह बहुत सफल व्यापारी नहीं रहे। उन्हें व्यापारिक जीवन में काफी संघर्ष करना पड़ा, काफी परिश्रम के बावजूद अनेक बार दुर्योग से हानि उठानी पड़ी और लाभ नगण्य रहा।

बचपन में ही संग्रहणी और शीतला के शिकार हुए। युवावस्था में पग रखते ही कुष्ठ रोग ने आ घेरा और मियादी बुखार भी इनका मेहमान बना। तीन विवाह हुए और नौ संतानें (दो सुता और सात सुत) हुईं और इनके सामने ही काल कवलित हो गईं। पहला विवाह ग्यारह वर्ष की बाल्यावस्था में हुआ था। जिस दिन विवाह कर घर लौटे उसी दिन उनकी नानी का निधन हो गया और उनकी बहन ने जन्म लिया। इस प्रकार शोक और हर्ष का संगम एक साथ बाल्यावस्था में ही देखने को मिला।

आठ साल की उम्र में गुरु पाण्डे की चटसाल में अक्षर बांचने और लेखन सीखने हेतु गये और एक वर्ष में ही व्युत्पन्न मति हो गये। उस जमाने में वणिक्–पुत्र को अधिक पढ़ने की आवश्यकता नहीं थीं फिर भी उन्होंने चौदह वर्ष की आयु में पंडित देवदत्त के पास नाममाला, अनेकार्थ, ज्योतिष, अलंकार, लघु कोकशास्त्र तथा स्फुट ४०० श्लोकों का अध्ययन किया। तदनन्तर मुनि भानुचंद से पंचसंधि की रचना, सामायिक पडिकौना (प्रतिक्रमण) आदि धार्मिक विधियां, छन्द, कोश, श्रुतबोध ग्रन्थ आदि का ज्ञानार्जन किया। यह विद्याव्यसन और श्रृंगारिकता की ओर उनका रुझान ऐसा बढ़ा कि उन्हें दो वर्ष तक खान–पान और रोजगार की भी सुधि नहीं रही और उन्होंने १४ वर्ष की अल्पायु में ही एक हजार दोहे चौपाई में **'नवरस'** नामक श्रृंगारिक रचना कर डाली। यद्यपि बाद में १६ वर्ष की वय में एक दिन मन में यह विचार उठने पर कि इसमें अनेक कल्पित झूठे वचन हैं और एक झूठ बोलने पर नरक दुख देखना पड़ता है, भावावेश में मित्रों के मना करते रहने पर भी अपनी पोथी तत्काल जौनपुर में गोमती नदी में बहा दी। आगरा में एक बार अपनी सब पूंजी खो चुकने और बिल्कुल खाली हाथ होने पर समय काटने के लिए रात में कुतबन की 'मृगावती' और मंझन की 'मधुमालती' नामक सूफी प्रेम–काव्यों को बांचने लगे जिन्हें सुनने के लिए उनके पास दस–बीस आदमी इकट्ठे हो जाते थे।

एक अध्यात्मज्ञानी व्यापारी के मन में कोमल भावनाओं का होना विरल माना जाता है, किन्तु बनारसीदास इसके अपवाद थे। वह तो एक भावुक कवि और असफल व्यापारी थे। भोले और भावुक होने के कारण वह सहज ही दूसरों के बहकावे में भी आ जाते थे। प्रतिदिन एक दीनार पाने के लोभ में एक सन्यासी वेशधारी के कहने पर वह एक वर्ष तक शौचालय में बैठकर गुप्तरूप से एक मंत्र

साधते रहे और जब सालभर की साधना के बाद कुछ हाथ न लगा तो पता लगा कि उसने उन्हें भोंदू बना दिया। इसी प्रकार एक बार एक योगी वेशधारी व्यक्ति से शिव–गृह (मुक्ति) की लालसा में संखोली और पूजा की सामग्री लेकर शिव–पूजन करने लगे, किन्तु विपत्ति के समय शिव की सहायता न पा दुखित हो गये। जिस किसी ने भी उन पर अथवा उनके परिवार पर कभी कोई उपकार किया उसके कृतज्ञ होना न भूले चाहे विपत्ति में उनके पिता की सहायता करने वाला करमचंद माहुर बनिया हो अथवा आगरा में उन्हें छह–सात माह तक उधार कचौड़ी खिलाने वाला कचौड़ीवाला हो। अपने मित्रों की स्मृति उन्हें बराबर बनी रही। अपने मित्र नरोत्तमदास पर तो वह ऐसे रीझे कि उस पर एक कवित्त रच डाला और उसे भाट की तरह घर–बाजार जहाँ–तहाँ पढ़ते फिरे।

'नवरस' नामक उपर्युक्त श्रृंगारिक रचना के अतिरिक्त बनारसीदास ने कवि धनंजय की संस्कृत 'नाममाला' और 'अनेकार्थमाला' के अनुकरण पर हिन्दी में एक पद्यबद्ध कोश **'नाममाला'** की रचना विक्रम संवत् १६७० (ईसवी सन् १६१३) में आश्विन शुक्ल दशमी, सोमवार को पूर्ण की थी जिसमें २०० छन्द थे, उनमें से अब १७५ उपलब्ध हैं। साथ ही **'अजितनाथ के छन्द'** की रचना की।

संवत् १६८० में बनारसीदास ने **'ज्ञान पच्चीसी'**, **'ध्यान बत्तीसी'**, **'अध्यात्म के गीत'**, **'शिवमंदिर'** इत्यादि अनेक कवित्तों की रचना की। संवत् १६८० से १६९२ के मध्य १०१ कवित्त वाली **'सुक्तिमुक्तावली'**, **'अध्यात्म बत्तीसिका'**, **'पैड़ी'**, **'फागु धमाल'**, **'सिंधुचतुर्दसी'**, स्फुट कवित्त, **'शिव पच्चीसी'**, भावना, **'सहस अठोत्तर नाम'**, **'करमछतीसी'**, **'झूलना'**, **'अंतर रावन राम'**, **'आँखें दोइ विधि'**, दो वचनिका (कदाचित् गद्य में निबद्ध **'परमार्थ वचनिका'** और **'उपादान निमित्त की चिट्ठी'**), **'अष्टक'** और बहुत से गीतों की रचना करने का उल्लेख उन्होंने अपनी आत्मकथा में किया है।

संवत् १६९२ में अनायास पं. रूपचंद नामक गुणी विद्वान आगरा आये और तिहुना साहु के देहरे पर ठहरे तो बनारसीदास की अध्यात्म मण्डली ने उनसे 'गोम्मटसार' ग्रन्थ का वाचन कराया। उनका प्रवचन सुनकर बनारसीदास और उनके साथी, जो तब तक निश्चय एकान्त में भटक रहे थे, अपनी दृष्टि को समीचीन और स्याद्वादमयी बनाने में सफल हुए। पं. रूपचंद आदि मित्रों की प्रेरणा से संवत् १६९३ (ईस्वी सन् १६३६) की आश्विन शुक्ल त्रयोदशी, रविवार को बनारसीदास ने **'समयसार नाटक'** की रचना पूर्ण की। आचार्य कुन्दकुन्द के प्राकृत ग्रन्थ 'समयसार प्राभृत', जिस पर कालान्तर में अमृतचंद्र आचार्य ने संस्कृत में 'आत्मख्याति टीका' और 'समयसार कलश' रचे थे तथा पाण्डे राजमल्ल ने

'बालबोधनी टीका' लिखी थी, पर आधारित होते हुए भी यह कृति मौलिकता लिये हुए एक विशिष्ट आध्यात्मिक रचना है। इसमें ३१० सोरठे और दोहे, २४५ इकतीसा सवैये, ८६ चौपाई, ३७ तेईसा सवैये, २० छप्पय, १८ घनाक्षरी, ७ अडिल्ल और ४ कुण्डलिया मिलाकर कुल ७२७ पद हैं। कदाचित् इस कृति में विभिन्न भावों का नाटकीय ढंग से चित्रण करने के कारण कवि ने इसे नाटक की संज्ञा दी है। कोमलकान्त पदावली तथा कुछ नवीन उद्‌भावनाओं के प्रयोग द्वारा इस कृति के माध्यम से बनारसीदास ने आत्म–तत्त्व जैसे नीरस विषय की सरस सरिता हिन्दी–रत्नाकर में प्रवाहित की है। पं. रतनचंद भारिल्ल के शब्दों में "सम्पूर्ण साहित्यिक गरिमाओं से युक्त **'समयसार नाटक'** हिन्दी साहित्य की बेजोड़ कृति है, जिसने इन्हें महाकवि तुलसीदास के समकक्ष प्रतिष्ठापित किया और जिसके छन्द 'रामचरितमानस' की भांति ही जन–जन के गेय बन गये थे।"

आगरा में रहते हुए बनारसीदास ने अपनी विचारधारा के विद्यारसिकों की एक मण्डली बना ली थी जिसका सम्पर्क दिल्ली और मुल्तान आदि प्रमुख नगरों के जैन विद्वानों से रहा था। भाषा कवित्त और अध्यात्म विषय में बहुभाषाविद बनारसीदास ने अपनी धाक जमा रक्खी थी। मुल्ताननगर में तो उनकी आध्यात्मिक शैली से प्रभावित अध्यात्मरसिक श्रावकों की एक मण्डली शाह वर्धमान नवलखा के नेतृत्व में बन गई थी जो उन्हें अपना धर्मगुरु मानती थी।

संवत् १६६८ (ईस्वी सन् १६४१) में बनारसीदास के मन में आत्मचरित लिखने का विचार आया और उन्होंने मनुष्य की आयु एक सौ दस वर्ष मानकर अपनी पचपन वर्ष की आपबीती को अपने गुण–दोष सहित उस वर्ष अगहन मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी, सोमवार, को 'अर्द्ध कथानक' नाम से आगरा में मध्यदेश (आगरा–मथुरा अंचल) की बोली में ६७५ दोहे–चौपाई में निबद्ध कर डाला।

एक गृहस्थ आध्यात्मिक कवि की यह आत्मकथा बड़ी मार्मिक और कई अर्थों में अनूठी है। जहाँ बनारसीदास के समकालीन तुलसीदास जी के जीवन की कुछ घटनाओं के विषय में प्रामाणिक आधार के अभाव में आज भी विद्वानों में मतभेद हैं, वहां बनारसीदास ने स्वयं अपना जीवनवृत्त लिखकर विद्वानों को इस विषय में ऊहापोह करने का कोई अवसर प्रदान नहीं किया। उनके जीवन की एक–एक घटना का काल–क्रम से ज्ञान पाठकों को इस पोथी से हो जाता है। इसमें उन्होंने अपना वंश परिचय तो दिया ही है, जौनपुर जहाँ वह जन्मे वहाँ के शाहों की वंशावली भी क्रम से दी है। मुग़ल बादशाह अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के राज्यकाल में जीने वाले कवि बनारसीदास की जीवनी जनता की बादशाह में आस्था, उसकी मृत्यु हो जाने पर दूसरे बादशाह के गद्‌दीनशीन होने

तक लोगों में भय व्याप्त हो जाने तथा पुरहाकिम नवाबों द्वारा जनता, विशेषकर व्यापारियों, पर अत्याचार किये जाने का सजीव चित्र प्रस्तुत करती है। संवत् १६५३ (ईसवी सन् १५९६) में अकाल पड़ने तथा संवत् १६७३ (ईस्वी सन् १६१६) में आगरा में प्लेग का प्रकोप होने की बात उक्त आत्मचरित से ज्ञात होती है। यह समकालीन घटनाओं के प्रति उनकी जागरूकता का द्योतक है।

पचपन वर्ष तक जीवन में अनेक उतार–चढ़ाव देख चुकने, सुख–दुख को भोगने और कटु–मधुर अनुभवों का आस्वाद ले लेने के उपरान्त बनारसीदास द्वारा प्रस्तुत यह आत्मचरित, जिसमें उन्होंने अपनी किसी दुर्बलता या दोष को भी न छिपाया हो, वास्तव में बड़ा ही मार्मिक है और उनके साहस का द्योतक है।

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दों में, "सत्यप्रियता, स्पष्टवादिता, निरभिमानिता और स्वाभाविकता का ऐसा जबरदस्त पुट इसमें विद्यमान है कि साहित्य की चिरस्थायी सम्पत्ति में इसकी गणना अवश्यमेव होगी। हिन्दी का तो यह सर्वप्रथम आत्मचरित है ही, पर अन्य भारतीय भाषाओं में इस प्रकार की और इतनी पुरानी पुस्तक मिलना आसान नहीं है।" **'अर्द्ध कथानक'** की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों से सम्पादन कर इसे अन्य महत्वपूर्ण अनुपूरक सामग्री के साथ अपने हिन्दी–ग्रन्थ–रत्नाकर कार्यालय से १९४३ ई. व तदनन्तर १९५७ ई. में प्रकाशित करने का श्रेय पं. नाथूराम प्रेमी को है।

बनारसीदास की अन्तिम ज्ञात कृति **'कर्म प्रकृति विधान'** है जिसकी रचना संवत् १७०० (ईस्वी सन् १६४३) की फाल्गुन शुक्ल सप्तमी को पूर्ण हुई थी। उनकी मृत्यु के उपरांत संवत् १७०१ (ईस्वी सन् १६४४) की चैत्र शुक्ल द्वितीया को आगरा में उनके मित्र पं. जगजीवन, जो स्वयं सुकवि रहे, ने उनकी प्रकीर्ण रचनाओं का एक संकलन **'बनारसी विलास'** नाम से किया था और उसे १९०५ ई. में पं. नाथूराम प्रेमी ने जब सम्पादित किया तो उसमें साठ छोटी–बड़ी पद्यात्मक रचनाएं थीं। बाद में उपलब्ध दो और रचनाओं को मिलाकर डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल ने ६२ रचनाओं का 'बनारसी विलास' सम्पादित किया। डॉ. नेमीचंद्र शास्त्री ने अपने 'हिन्दी–जैन–साहित्य–परिशीलन भाग–१' में कवि बनारसीदास की रचनाओं में **'बरवै' 'सोलह तिथि'**, **'तेरह काठिया'**, **'मोक्षपैडी'** और **'अध्यात्म–हिण्डोलना'** का भी उल्लेख किया है जो प्रकीर्ण रचनाओं की कोटि में आती हैं। बनारसीदास की पूर्वोक्त **'सुक्तिमुक्तावली'** आचार्य सोमप्रभ की संस्कृत **'सूक्ति मुक्तावली'** का हिन्दी पद्यानुवाद है। उन्होंने अमृतचंद्र के 'समयसार कलश' और कुमुदचन्द्र के 'कल्याण मंदिर स्तोत्र' का भी हिन्दी अनुवाद किया था जो **'बनारसी–विलास'** में संकलित हैं।

कविवर बनारसीदास पर अपने शोध प्रबंध में डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन ने उनकी एक और उपलब्ध आध्यात्मिक रचना **'मोह–विवेक युद्ध'** का उल्लेख किया है जिसमें ११० छन्द हैं। कृति में रचनाकाल इंगित न होने के कारण डॉ. जैन ने भाषा सारल्य, भावों की स्वाभाविक उठान तथा प्रसादपरक शैली के आधार पर उसे कविवर की प्रारंभिक अवस्था अर्थात् श्रृंगारिक जीवन से विरक्ति के ठीक पश्चात की रचना बताया है।

बनारसीदास ने विभिन्न राग–रागिनियों पर आधारित गीत–पद भी रचे थे जो उनके शास्त्रीय संगीत–ज्ञान के द्योतक हैं।

बनारसीदास के निधन की निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है। परंतु यह अनुमान किया जाता है कि उनकी मृत्यु **'कर्म प्रकृति विधान'** की रचना पूर्ण होने के पश्चात तथा **'बनारसी विलास'** का संकलन होने के पूर्व के अन्तराल में किसी समय हुई होगी।

जौनपुर के हाकिम चीनी किलीच को बनारसीदास ने नाममाला, छंद, कोश और श्रुतेबोध पढ़ाया था और वह उनको मित्रवत मानता था। कहा जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास (देहोत्सर्ग ईस्वी सन् १६२३) और संत कवि सुन्दरदास (ईस्वी सन् १५९६–१६८६) से भी कवि बनारसीदास का सम्पर्क–समागम हुआ और उनके मध्य छन्दों का परस्पर आदान–प्रदान हुआ था, किन्तु चूंकि **'अर्द्ध कथानक'** इस विषय में मौन है इन किंवदंतियों की सत्यता के विषय में कुछ कहना कठिन है।

एक आस्थावान जैन होते हुए भी बनारसीदास एक उदारचेता कवि थे और संत कबीर की भांति हिन्दु–मुस्लिम समन्वय के भी पोषक रहे जैसा कि उनके निम्न दोहों से ध्वनित होता है–

एक रूप हिन्दू तुरक, दूजी दसा न कोइ।
मन की दुबिधा मानकर, भए एकसौं दोइ।।
दोऊ भूले भरममैं, करैं बचन की टेक।
'राम राम' हिंदू कहैं, तुर्क 'सलामालेक'।।'

आत्मसत्ता के प्रसंग में रचित उनके सवैये की इन अन्तिम दो पंक्तियों का अभिधा अर्थ तो आजकल के राजनेताओं पर भी सटीक बैठता है–

"सत्ता की समाधि में विराजि रहैं सोई साहु,
सत्तातैं निकसि और गहैं सोई चोर हैं।।"

अपनी रचनाओं द्वारा सत्यं–शिवं–सुन्दरं की त्रिवेणी प्रवाहित कर हिन्दी–रत्नाकर को समृद्ध करने वाले कविवर बनारसीदास प्रणम्य हैं।

– रमा कान्त जैन
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

मथुरा की नैगमेश मूर्तियाँ और कृष्ण जन्म

— डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

जैन पुराण शास्त्रों में हिरण, मेंढे अथवा अज (बकरा) जैसे मुखवाले एक देवता का उल्लेख नैगमर्षि, नैगमेश, नैगमेय, नैगमेशिन, हरिणिगमिसि, हरिनैगमेसि, हारि इत्यादि नामों से विभिन्न ग्रन्थों में हुआ है। मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त शुंग–शक–कुषाणकालीन प्राचीन जैन अवशेषों में भी इस देवता के कई मूर्त्ताङ्कन मिले हैं जिनमें से एक पर 'भगवनेमेसो (भगवान नैगमेश) नाम भी अंकित है (देखिए– एपीग्रेफिका इण्डिया, भाग २, पृ. ३१४, चित्रफलक २)। इस देवता को देवराज इन्द्र का अनुचर, एक स्थान में इन्द्र की पैदल सेना का कप्तान बताया जाता है और शिशुओं के जन्म, पोषण और संरक्षण से उसका विशेष संबंध है, ऐसा विश्वास किया जाता है। ब्राह्मण (हिन्दू) परम्परा में भी नवजात शिशुओं की हित कामना के लिए इस देवता की पूजा, मानता की जाती है। कहीं–कहीं उसके दो रूपों–एक शुभ एवं कल्याणकर और दूसरा अशुभ एवं अनिष्टकर का भी संकेत मिलता है।

जैन परम्परा में दिगम्बर आम्नाय के **हरिवंशपुराण** एवं महापुराणान्तर्गत **उत्तर पुराण** में तथा श्वेताम्बर आम्नाय के **नेमिनाथ चरित्र** और **त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित** में कृष्ण जन्म के प्रसंग से इस देवता का विशेष तथा सर्वप्रथम उल्लेख हुआ है। जिनसेन सूरि पुन्नाट द्वारा ७८३ ई. में रचित **हरिवंश पुराण** में प्राचीन क्षत्रियों के सुप्रसिद्ध हरिवंश का विस्तृत वर्णन हुआ है। उस वंश में उत्पन्न शूर की सन्तति में शौरिपुर (आगरा के निकट) नरेश अन्धकवृष्टि के दशपुत्रों में सबसे बड़े समुद्र विजय थे और सबसे छोटे वसुदेव। समुद्र विजय के पुत्र अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) बाइसवें तीर्थङ्कर थे, और वसुदेव के पुत्र कृष्ण जैन परम्परा के त्रिषष्ठिशलाका पुरुषों में प्रसिद्ध त्रिखण्ड चक्रवर्ती नारायण थे, उनके ज्येष्ठ भ्राता बलराम भी शलाका पुरुष थे। स्वयं वसुदेव कामदेवोपम सुन्दर, सुरूप, सबके प्रिय, अत्यन्त पराक्रमी और साहसी थे। वस्तुतः **हरिवंश पुराण** के मुख्य नायक वसुदेव ही हैं। वसुदेव की पत्नी देवकी भोजकवंशी उग्रसेन की पुत्री और मथुराधिप कंस की भगिनी थी। स्वयं कंस प्रतापी मगधनरेश जरासंध का जामाता था। कंस दुष्ट, अत्याचारी एवं पितृद्रोही था। उसकी पत्नी भी दुष्ट प्रकृति की थी। कंस ने अपने उपकारक बहनोई वसुदेव और बहिन देवकी को अपने बंदीगृह

में डाल रखा था और वहीं देवकी के छह शिशुओं का जन्म हुआ जिन्हें कंस ने जन्मते ही शिला पर पटक कर मार दिया, क्योंकि यह भविष्यवाणी हो चुकी थी कि देवकी–पुत्र द्वारा कंस का पतन एवं संहार होगा, तथापि देवकी की सातवीं संतान, कृष्ण, की गुप्त रूप से गोकुल में नन्दगोप के यहाँ उसे पहुँचाकर रक्षा कर ली गई और अन्ततः भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। इन समस्त तथ्यों के विषय में जैन एवं ब्राह्मणीय अनुश्रुतियाँ प्रायः पूर्णतया एक मत हैं। दिगम्बर–श्वेताम्बर परम्पराओं में तो कोई विशेष मतभेद है ही नहीं।

परन्तु जो बात ब्राह्मणीय कृष्ण चरित्र में कहीं नहीं दृष्टिगोचर होती किन्तु जैनों के उभय सम्प्रदायों के साहित्य में प्रायः एक सी प्राप्त होती है वह है उपरोक्त नैगमेश नाम के देवता द्वारा, इन्द्र की आज्ञा से, देवकी की कृष्ण के पूर्व जन्मी छह संतानों की सुरक्षा। **हरिवंश पुराण** (सर्ग ३३, श्लोक १६७–१७३ तथा सर्ग ३५, श्लोक ४–८) के अनुसार देवकी के वासुदेव (कृष्ण) से पूर्व क्रम से उत्पन्न उक्त छहों पुत्रों में से प्रत्येक को जन्मते ही इन्द्र के आज्ञाकारी 'हारि' अपरनाम "सुनैगम" नामक देव ने मथुरा में कंस के बंदीगृह से ले जाकर भद्रिलपुर नाम के नगर में सुदृष्टि नामक सेठ की अलका नामक पत्नी के पास पहुँचा दिया, जहाँ उनका पुत्रवत् लालन–पालन हुआ।

वस्तुतः अलका ने भी उसी–उसी समय युगल पुत्रों को जन्म दिया था, जो जन्मते ही मर गये। वह देव उन मृत पुत्रों को लाकर देवकी के पास लिटा देता था। देवकी और अलका, दोनों को ही इस शिशु–परिवर्तन के विषय में कुछ भी पता नहीं था, और कंस अलका द्वारा प्रसूत उक्त मृत पुत्रों के शवों को ही देवकी की सन्तान समझकर शिला पर पटक कर मार डालने से संतुष्ट हो जाता था। आचार्य गुणभद्र (लगभग ८५० ई.) कृत **उत्तर पुराण** (पर्व ७०, श्लोक ३८४–३९०, तथा पर्व ७१, श्लोक २९३–९८) में भी प्रायः यही कथा दोहराई गई है, किन्तु देव का उल्लेख 'नैगमर्ष' और 'नैगमर्षि' नाम से किया गया है। श्वेताम्बर **नेमिनाथ चरित्र,** हरिभद्र सूरिकृत **नेमिनाह चरिउ** (पद्यांक २२७५–२२८५) एवं आचार्य हेमचन्द्रकृत **त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र** में भी नैगमेश नामक इस देव का कृष्ण जन्म के इस प्रसंग में प्रायः ऐसा ही वर्णन हुआ है। केवल नामादिक कहीं–कहीं कुछ भिन्न हैं।

मथुरा यदुवंशियों की प्रसिद्ध प्राचीन नगरी है, कृष्ण की जन्मभूमि एवं लीलाभूमि है, कृष्ण के ही सगे ताऊजात भाई एवं अत्यन्त स्नेहभाजन तीर्थङ्कर नेमिनाथ का भी यह प्रसिद्ध तीर्थ माना जाता है (देखें– जिनप्रभसूरि कृत

विविधतीर्थकल्प)। मथुरा के उसी कंकाली टीला स्थल से प्रायः उसी प्राचीन काल (शक–कुषाण) की कई प्रतिमाएं तीर्थंकर नेमिनाथ की ऐसी प्राप्त हुई हैं जिनमें तीर्थंकर के आजू–बाजू कृष्ण और बलराम की मूर्तियां अंकित हैं। इस प्रकार की मूर्तियां अन्यत्र सुनने में नहीं आयी हैं। अस्तु, मथुरा से प्राप्त उक्त नैगमेश मूर्तियों या मूर्त्तांकनों का सम्बन्ध देवकी और अलका के नवजात शिशुओं की अदला–बदली से ही है, इस विषय में हमें कोई सन्देह प्रतीत नहीं होता।

आधुनिक युग में ब्हूलर, फूहरर, स्मिथ आदि कतिपय प्रारम्भिक पुरातत्वविदों ने मथुरा की उक्त नैगमेश मूर्तियों का सम्बन्ध भ्रमवश भगवान महावीर के जन्म के साथ जोड़ दिया, और उत्तरवर्ती प्रायः सभी तद्विषयक लेखकों ने आंख मींचकर उसी भ्रांत धारणा का अनुसरण किया। इन मूर्त्तांकनों में एक भी अभिलेख अथवा अन्य संकेत ऐसा नहीं है जो देवकी–पुत्रों के जन्म के प्रसंग के साथ उनका सम्बन्ध स्थापित करने में बाधक हो, या महावीर जन्म के साथ उन्हें जोड़ने में साधक हो।

श्वेताम्बर परम्परा में मान्य **कल्पसूत्र** में ऐसी कथा आती है कि महावीर का जीव देवलोक से चलकर देवनन्दा नाम की ब्राह्मणी के गर्भ में आया। इन्द्र को जब यह बात ज्ञात हुई तो उसने सोचा यह तो अनुचित हुआ, तीर्थंकर को तो क्षत्रियाणी के ही गर्भ से उत्पन्न होना चाहिये। अतएव इन्द्र की आज्ञा से हरिनैगमेशी नामक देव ने देवानन्दा के उदर से त्रिशला के उदर में गर्भस्थ महावीर का स्थानान्तरण कर दिया। दिगम्बर परम्परा में तो गर्भापहरण सम्बन्धी इस कथा का कहीं कोई लेशमात्र भी संकेत नहीं है– उसके तो सिद्धान्त, मान्यताएं और अनुश्रुतियां सभी से यह कल्पना बाधित है। स्वयं श्वेताम्बर परम्परा के भी कई प्राचीनतर आगम एवं आगमिक ग्रन्थों में ऐसे कथन प्राप्त होते हैं जो या तो इस मान्यता के साधक नहीं हैं अथवा विरोधी हैं। अनेक वर्तमान श्वेताम्बर विद्वान भी गर्भापहरण वाली मान्यता को अप्राकृतिक मानते हैं तथा उसे साम्प्रदायिक विद्वेष से प्रेरित एक उत्तरकालीन क्षेपक समझते हैं।

ब्हूलर (उपरोक्त एपी. इंडि.), स्मिथ (दी जैन स्तूप, पृ. २५–२६) तथा कनिंघम (ए.एस.आई. रिपोर्ट, भा. २०, पृ. ३६) ने इनमें से जिस नैगमेश मूर्त्तांकन का विशेषरूप से उल्लेख किया है वह देवराज इन्द्र की सभा में नैगमेश द्वारा अपने कर्म की सफलता की सूचना देने का दृश्य भी हो सकता है, महिला शची (इन्द्राणी) हो सकती है, दृश्यांकित बालक के हाथ की पीछी (?) या वस्त्र (?) उसके चरम–शरीरी होने का प्रतीक है, जैसा कि देवकी के उक्त छहों पुत्रों के सम्बन्ध में भविष्यवाणी थी। इस शिलापट्ट के पृष्ठ भाग में जो उत्सव का दृश्य

अंकित है वह भद्रिलपुर में अलका सेठानी के घर तेजस्वी पुत्रों के जन्मोत्सव का दृश्य है।

नैगमेश के मथुरा से प्राप्त चार–पांच मूर्त्तांकनों में से एक में देव खड़ा है और उसके कन्धों पर तथा दोनों हाथ पकड़े हुए पांच–छः बालक अंकित हैं। यह दृश्य भी देवकी द्वारा प्रसूत और अलका द्वारा लालित–पालित उक्त छह चरम शरीरी (उसी भव में निर्वाण प्राप्त कर सिद्ध परमात्मा बनने वाले) तेजस्वी बालकों की रक्षा कर पाने से हर्षित हुए, उछलते–कूदते नैगमेश का प्रतीत होता है।

अभी हाल में, पूज्य मुनि श्री विद्यानंद जी ने इस दृश्य को बालक महावीर द्वारा पराभूत किये जाने पर, उनकी परीक्षा करने के लिए आये संगम नामक देव का महावीर के साथी बालकों के साथ क्रीड़ारत होने के समय का अनुमान किया है।

मथुरा की उपरोक्त नैगमेशी मूर्त्तियों एवं मूर्त्तांकनों को देखकर, उनका निरीक्षण–परीक्षण करके तथा तत्सम्बन्धी अध्ययनों, साहित्योल्लेखों एवं अनुश्रुतियों का अध्ययन कर हमें तो यही लगता है कि उनका सम्बन्ध भगवान महावीर के कथित गर्भापहरण की घटना के साथ तो नहीं है, और इस बात की प्रायः शत–प्रतिशत संभावना है कि उनका सम्बन्ध स्वयं मथुरा में अत्याचारी कंस के बन्दीगृह में देवकी द्वारा प्रसूत शिशुओं की इन्द्र की आज्ञा से नैगमैश द्वारा अलका सेठानी की गोद में स्थानान्तरण करके रक्षा करने से है।

[जैन–सन्देश (शोधाङ्क) ३३ से साभार]

अहिंसा इन्टरनेशनल के पुरस्कार

अहिंसा इन्टरनेशनल, नई दिल्ली ने वर्ष २००१ के अपने निम्नांकित पुरस्कारों के लिए **३१ जनवरी २००३ तक** नाम/प्रस्ताव आमंत्रित किए हैं–

१. अहिंसा इन्टरनेशनल डिप्टीमल आदीश्वर लाल जैन साहित्य पुरस्कार (रु. ३१,०००/–) – समग्र साहित्य या एक कृति पर।

२. अ. इ. भगवान दास शोभा लाल जैन शाकाहार पुरस्कार (रु. २१,०००/–) – शाकाहार प्रचार में श्रेष्ठ कार्य के लिए।

३. अ. इ. रघुवीर सिंह जैन जीव रक्षा पुरस्कार (रु. २१,०००/–) – जीव रक्षा के क्षेत्र में श्रेष्ठ कार्य के लिए।

४. अ. इ. प्रेमचन्द्र जैन पत्रकारिता पुरस्कार (रु. २१,०००/–) – रचनात्मक जैन पत्रकारिता में श्रेष्ठ योगदान के लिए।

सम्पर्क – प्रदीप कुमार जैन, सचिव, ४६८७, उमराव गली, पहाड़ी धीरज, दिल्ली।

सम्पादकीय

मंगलम् पुष्पदंताद्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्

दिगम्बर जैन परम्परा के जिनशासन में सर्वाधिक उपकार तीन महान आत्माओं का ही माना गया है–तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी का, जिन्होंने सर्वजन हिताय सर्व कल्याणकारी श्रेष्ठ मोक्ष मार्ग का उपदेश दिया, गणधर देव का, जिन्होंने जिनवाणी जनभाषा में निबद्ध कर जन–जन को सुलभ कराई तथा भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य का जिन्होंने धर्म में आए विकृति के मल को दूर कर जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट मूल आम्नाय को पुनः प्रतिष्ठापित किया। मूल या शुद्धाम्नाय का कुन्दकुन्दाम्नाय पर्यायवाची हो गया। दिगम्बर जैन आम्नाय में वस्तुतः भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य का उपकार गणधर देव के समक्ष ही माना गया है। वे शुद्ध आम्नाय के मूल आचार्य हैं, रत्नत्रयधारी मुनियों के आदर्श हैं। आज प्रत्येक दिगम्बर जैन धर्मावलम्बी अपने को कुन्दकुन्दान्वयी कहलाने में गौरवान्वित अनुभव करता है। शास्त्र वाचन से पहिले प्रवचनकार भी यह घोषित करते हैं कि "इस शास्त्र के मूल कर्ता श्री सर्वज्ञ तीर्थंकर देव ही हैं तदनंतर गणधर देव प्रति गणधर देव हैं, आगे उन्हीं के वचनानुसार श्री कुन्दकुन्द आचार्य की आम्नाय में यह विरचित हुआ है।" तदुपरांत शास्त्रारंभ करने के पूर्व वे यह मंगल श्लोक अवश्य पढ़ते हैं–

मंगलम् भगवान वीरो, मंगलम् गौतमो गणी।
मंगलम् कुन्दकुन्दाद्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्।।

(श्री वीर प्रभु, श्री गौतम स्वामी व श्री कुन्दकुन्दाचार्य तथा उनकी परम्परा में हुए सभी आचार्य–साधुगण सहित जैन धर्म हमारे लिए सर्वमंगलमय हो।)

दिगम्बर जैन समाज में किसी भी मांगलिक कार्य को प्रारंभ करने के पूर्व भी यह मंगल श्लोक पढ़ने का रिवाज है।

श्री दिगम्बर जैन मंदिर जी के प्रांगण में पूज्य आचार्य श्री पुष्पदंत सागर महाराज के परम प्रिय शिष्य पूज्य मुनि श्री सौरभ सागर महाराज का प्रवचन था। मुनि श्री ने प्रवचन प्रारंभ करने के पूर्व मंगल श्लोक का वाचन निम्न प्रकार किया–

"मंगलम् भगवान वीरो, मंगलम् गौतमो गणी।
मंगलम् पुष्पदंताद्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्।।"

धर्म चर्चा के समय हमने मुनि श्री से परम्परागत मंगल श्लोक में उपरोक्त संशोधन करने के विषय में जिज्ञासा की तो उनका उत्तर था कि "यह श्लोक किसी प्राचीन आचार्यकृत नहीं है। यह तो दिगम्बरों ने वैष्णवों द्वारा प्रयुक्त

मंगल श्लोक (मंगलम् भगवान विष्णो, मंगलम् पुण्डरीकाक्षो– –) या श्वेताम्बरों के द्वारा अपनाए गए मंगल श्लोक, (– – –मंगलम् स्थूलभद्राद्यो– – ।") 'की नकल में गढ़ लिया है। कुन्दकुन्द तो **एकांतवादी** थे– – यदि हम अपने गुरुवर्य जिन्होंने हमें उंगली पकड़कर चलना सिखाया से सबके मंगल की कामना करते हैं तो इसमें बुराई क्या है?"

मुनि श्री साढ़े १२ वर्ष की बाल्यावस्था में ही गृह त्यागकर आ. श्री पुष्पदंत सागर महाराज के संघ में प्रविष्ट हो गए थे। अतः जो कुछ धार्मिक, लौकिक ज्ञान उन्होंने अर्जित किया है, वह सब गुरु चरणों में १२ वर्ष तक संघ में रहकर ही किया है। २२ वर्ष की आयु होते–होते उन्होंने मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली। मुनि श्री अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी हैं, कुशल प्रवचनकार हैं। दाढ़ी केश विहीन मुख मण्डल पर सजी संवरी मूछें उनकी आकृति को विशेष भव्यता प्रदान करती हैं। (मुनि श्री बंद कमरे में ही केश लोंच करते हैं।) ३२ वर्ष की आयु में ही उनकी १५ कृतियां प्रकाशित हो गई हैं जिनमें एक सचित्र पुस्तिका–**'फैशन एक अभिशाप'** में श्रृंगार के आधुनिक प्रसाधनों को रक्त–मांस चर्बी उत्पाद दर्शाते हुए विवेकशील महिलाओं को उनके प्रयोग से विरत रहने का उपदेश दिया गया है। उल्लेखनीय दो अन्य हैं–**'श्री भक्तामर विधान'** तथा **'श्री पार्श्वनाथ विधान'** (श्री कल्याण मंदिर स्तोत्र)। ये दोनों स्तोत्र जिनेन्द्र भक्ति के श्रेष्ठ स्तुति काव्य हैं और जैन समाज की सभी आम्नायों में अत्यधिक लोकप्रिय हैं। दोनों स्तोत्रों के प्रत्येक श्लोक के साथ उसका पद्यानुवाद, श्लोकार्थ, अर्घ, ऋद्धि–मंत्र–विधि, आदि दिए गए हैं, जिनसे इन प्रकाशनों का महत्व बहुत बढ़ गया है। इन मंत्रों में विभिन्न तीर्थंकरों की शासन देवियों (चक्रेश्वरी, पद्मावती, अम्बा आदि), यक्ष यक्षिणियों के अतिरिक्त सनातन हिन्दू धर्म की गौरा देवी के नवरात्रि में पूजे जाने वाले नवों रूप–ब्रह्मचारिणी, कात्यायनी, काली, महाकाली, बगुलामुखी आदि (मुनि श्री के गुरु आचार्य श्री नवरात्रि विधान कराने की ख्याति अर्जित कर चुके हैं, मुनि श्री ने भी चातुर्मास स्थापना के बाद सर्व प्रथम नव ग्रह विधान सम्पन्न कराया, कदाचित् चातुर्मास के सुखद, सकुशल प्रवर्तन व समापन के लिए ग्रहों की अनुकूलता सुनिश्चित करना भी व्यवहारिक आवश्यकता है, भले ही जिन शासन में उन्हें ज्योतिष देवों के विमान कहा गया हो जो किसी का हित–अहित नहीं करते) सहित लक्ष्मी, महालक्ष्मी आदि अन्य देवियों की भी वंदना युक्त मंत्र हैं। श्रद्धापूर्वक मंत्र जाप का फल विभिन्न कामनाओं की पूर्ति होना बताया गया है– **इच्छित पुरुष और वांछित स्त्री की प्राप्ति भी।**

जिन आगम के अनुसार शासन देव–देवियां, यक्ष–यक्षिणियां व्यन्तर जाति के

देव देवियां हैं जो देवगति का निम्नतम वर्ग है। देवगति के जीव असंयमी तथा रागी द्वेषी होने के कारण पूजा योग्य नहीं माने जाते। व्यन्तर जाति के देव तो जन्मतः सम्यग्दृष्टि भी नहीं होते। दो मंत्र तो और भी विचित्र हैं–

(१) 'ऊँ लक्ष्मण रामचन्द्र देव्यै नमः स्वाहा'। (भक्तामर स्तोत्र श्लोक ८ का मंत्र) तथा

(२) 'ऊँ नमो रावणाय विभीषणाय करय करुणाय लंकाधिपतये महाबल, पराक्रमाय ममश्चिन्तितं कुरु कुरु स्वाहा'। (भक्तामर स्तोत्र– श्लोक ४४ का मंत्र)

यह ध्यान देने योग्य है कि लक्ष्मण और रावण वर्तमान में नरक गति के दुःख भोग रहे हैं। श्री कुन्दकुन्द देव ने मोक्ष पाहुड़ में शासन देवी–देवताओं को खोटे देव कहा है तथा इनकी पूजा उपासना करने वालों को नरकगामी कहा है। अन्य देवताओं तथा नरकों के असह्य दुख भोग रहे जीवों का (जिन्हें असातावेदनीय के उदय के कारण सदा आर्त ध्यान ही रहता है) तो कहना ही क्या?

इन दोनों विधान पुस्तकों के सम्पादकीय वक्तव्यों आदि से यह स्पष्ट नहीं होता कि इन मंत्रों के स्रष्टा मुनि श्री ही हैं या उनके गुरुवर्य हैं या इन्हें कहीं अन्यत्र से संकलित कर प्रस्तुत किया गया है। पर इतना अनुमान तो लगाया जा सकता ही है कि मुनि श्री तथा उनके गुरुवर्य (दोनों के भव्य चित्र भी इस पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर प्रकाशित हैं) इन मंत्रों का अनुमोदन करते होंगे। हमारी अल्प बुद्धि में परम वीतरागी जिनेन्द्र भगवान की स्तुति में रचे गए ये श्रेष्ठ भक्ति स्तोत्र हैं जिनमें भक्त अपनी भक्ति के फल में उन्हीं के समान वीतरागी होने की कामना करता है। इन स्तोत्रों के श्लोकों में इस प्रकार के मंत्रों को गर्भित करना क्या इनका दुरुपयोग नहीं है; धर्म मूढ़ता–देवमूढ़ता का प्रचार–प्रसार करना नहीं है? इन्हें मूल दिगम्बर जैन आम्नाय सम्मत तो कैसे से कम नहीं कहा जा सकता।

मुनि श्री के गुरुवर्य पूज्य आचार्य श्री पुष्पदंतसागर जी महाराज इस युग के एक महान् प्रभावक आचार्यों में हैं। वे स्वयं भी युवा होते–होते मुनि और फिर आचार्य हो गए और उनके सब शिष्य भी युवा मुनि हैं। मध्यप्रदेश की एक वीरान पड़ी टेकरी पर अल्प समय में ही करोड़ों रुपयों के निर्माण कार्य सम्पन्न कराकर उन्होंने एक नवीन अतिशय क्षेत्र 'पुष्पगिरि' का अवतरण कर अपने को अमर किया है। वे एक कुशल प्रवचनकार हैं तथा उन्होंने ओशो रजनीश की प्रवचन शैली को खूब आत्मसात किया है। सार्वजनिक स्थानों पर सहस्रों श्रोताओं की उपस्थिति में प्रवचन करना ही उन्हें तथा उनके परम शिष्यों को रुचता है। आचार्य श्री ने अपने एक लेख में अपने एक दूसरे परम शिष्य युवा मुनि श्री तरुणसागर जी की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि "मुनि तरुणसागर जी ने महावीर के उपदेशों को, जैन दर्शन और जैन मुनि को टी.वी. के माध्यम से सारे विश्व में पहुंचा दिया। यदि

जैन मुनि इसी प्रकार टी.वी. पर, शहर के व्यस्त चौराहों पर धर्मोपदेश देते रहे, तो निश्चित ही तृतीय युद्ध की संभावना समाप्त हो जाएगी---**यह युग (युवा) मुनियों के उत्कर्ष का युग है, वे धर्म रथ को खींचने वाले बैल हैं–** उन्हें देखकर बौखलाएं नहीं और जनता को बरगलाए नहीं।''('क्रान्तिकारी युवा मुनि' के विरुद से अलंकृत तथा आरोह–अवरोहयुत अभिनयी–प्रवचन–शैली प्रवीण श्री तरुणसागर जी दो वर्ष पूर्व अहिंसा महाकुंभ के नाम से एक विशाल अहिंसा रैली आयोजित करने के लिये विशेष ख्याति अर्जित कर चुके हैं।)

आचार्य श्री तथा उनके प्रिय शिष्य क्रांतिकारी मुनि श्री तरुणसागर जी को छत्तीसगढ़ एवं मध्य प्रदेश के मुख्य मंत्रियों ने अपने राज्यों में प्रवेश पर राज्य अतिथि का दर्जा प्रदान कर सम्मानित किया है। आचार्य श्री ने अपनी प्रतिक्रिया में इसे राज्य सरकार द्वारा जैन धर्म का समर्थन बताया तथा जैन धर्म के अनुयायियों के लिए सौभाग्य की बात बतायी। एक जैन समाचार पत्र ने लिखा है कि इस प्रकार का सम्मान पहली बार किसी जैनाचार्य व जैन मुनि को दिया गया है। (हमारी समझ में यह नहीं आ रहा है कि क्या अब आचार्य श्री सुरक्षा बलों के घेरे में विहार करा करेंगे तथा क्या वे राज्य अतिथिगृहों में ठहरकर वहाँ उपलब्ध सुविधाओं का उपभोग किया करेंगे– जिसके वे अब अधिकारी हो गए हैं।)

आचार्य श्री की एक भव्य मासिक पत्रिका 'पुष्प वार्ता' भी प्रकाशित होती है जिसमें कमलासन पर अर्हन्त मुद्रा में विराजमान उनके भव्य चित्र सहित विभिन्न मुद्राओं में उनके चित्र व प्रवचनांश रहते हैं। इस पत्रिका के नवम्बर २००१ के अंक में उनके एक भक्त श्री अरविन्द कुमार जैन (कोलकाता) लिखते हैं– ''हमारे गुरुवर्य जैन समाज के एलसेशियन गॉड हैं (हम इस उपमा के अर्थ नहीं समझ पा रहे हैं। अभी तक तो हमने 'एलसेशियन' शब्द को एक प्राणी विशेष की प्रजाति विशेष के लिए ही प्रयुक्त होते सुना था) – आचार्य पुष्पदंत के बैठने की मुद्रा भी तीर्थंकर जैसी ही है– – इस महान् संत को देखकर २५वें तीर्थंकर की कल्पना को साकार किया जा सकता है–।''

आचार्य श्री के भक्तों का दुर्भाग्य है (और हमारा भी) कि हमारे अदूरदृष्टि (?) प्राचीन आचार्य भगवान महावीर स्वामी को इस अवसर्पिणी काल के अंतिम तीर्थंकर घोषित करके २५वें तीर्थंकर के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं छोड़ गए वर्ना २५वें तीर्थंकर पद के दावेदार तो और भी आचार्य थे।

आचार्य श्री पुष्पदंत सागर महाराज में अभिनय कला की भी अपूर्व क्षमता है। कुछ वर्ष पूर्व बहराइच में एक धर्म महोत्सव के अवसर पर आचार्य श्री ने भगवान महावीर का ऐसा जीवन्त अभिनय किया था कि दर्शकों को लगा था मानो महावीर

पुनः अवतरित होकर आ गए हों। (वैसे सभी द्रव्यलिंगी मुनि तीर्थंकर प्रभु के साधना जीवन का अभिनय ही तो कर रहे हैं, उसे जीते तो केवल भावलिंगी मुनि ही हैं, जो अतिविरल हैं।)

उपर्युल्लिखित दोनों स्तोत्र ग्रंथों में श्री पद्मप्रभु व श्री पार्श्वनाथ–दो तीर्थंकर चालीसों सहित मुनि श्री सौरभसागर महाराज विरचित श्री पुष्पदंतचालीसा भी दिया गया है जिसमें अपने गुरुवर्य का भक्तिगान करते हुए मुनि श्री ने लिखा है कि 'आचार्य श्री पुष्पदंतसागर महाराज ने कई मंत्रों को सिद्ध किया है, वे मंत्रों के ज्ञाता हैं, ज्योतिषी हैं तथा **जो कोई इस चालीसे का चालीस दिन तक नित चालीस बार पाठ करेगा, उसके रोग शोक मिट जावे तथा पाप पास आवे नहीं।'** मुनि श्री सत्य महाव्रत के धारी हैं, अतः उनके वचन में संशय की गुंजाइश नहीं है। इससे तो यही प्रतीत होता है कि आचार्य श्री पुष्पदंतसागर जी ने भी तीर्थंकरों की भांति रोग–शोक पर विजय प्राप्त कर ली है तथा उनके भक्तिगान मात्र से ही श्रद्धालुजनों को भी रोग–शोक पाप से अनायास ही मुक्ति प्राप्त हो जाएगी जो कदाचित् तीर्थंकरों के गुणगान मात्र से भी संभव नहीं है। है न कितना सरल नुस्खा।

लगता है भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य तथा उनके द्वारा पुनर्प्रतिष्ठित एवं तीर्थंकर महाप्रभु द्वारा उपदिष्ट शुद्ध मूल आम्नाय अब अप्रासंगिक हो गए हैं, कुन्दकुन्द व उनकी परम्परा में हुए प्राचीन आचार्यों द्वारा निरूपित श्रमणाचार जिसका विस्तृत वर्णन मूलाचार, भगवती आराधना में किया गया है, अब कदाचित् समयानुकूल नहीं रह गए हैं तथा अब महान प्रभावक मंत्र वेत्ता मांत्रिक व ज्योतिषी आचार्य श्री पुष्पदंतसागर महाराज से दिगम्बर जैन धर्म में एक नई परंपरा का अभ्युदय हो रहा है।

इस अभिनव परम्परा के संवाहक धर्म रथ को द्रुत गति से खीचने वाले बैल–उनके शिष्य युवा मुनिगण हैं जो भगवान महावीर को मंदिरों से निकाल चौराहों पर खड़ा कर रहे हैं और समस्त विश्व में टी.वी. आदि के संचार माध्यमों से जैन धर्म का प्रचार–प्रसार कर रहे हैं, भले ही इस प्रचार–प्रसार से किसी ने भी कदाचित् जैन धर्म स्वीकार न किया हो।

हमारे प्राचीन आचार्य महाव्रतियों के ब्रह्मचर्य व्रत के स्खलन के प्रति बहुत आशंकित रहते थे। उनकी धारणा थी कि घोर अखंड ब्रह्मचर्य महाव्रत का पालन करना अत्यंत दुष्कर है (उग्गं महाव्वयं बंभं धारे यव्वे सुदुक्करं)। इसलिए उन्होंने विधान किया था कि 'स्वादिष्ट भोजन पान शीघ्र ही मद की वृद्धि करता है, अतः ब्रह्मचर्य के पालन करने वाले साधु को ऐसे भोजन पान का सदैव त्याग करना चाहिए (पणीयं भत्त–पाणं तु खिप्पं मय विवडणं बंभचेर–रओ भिक्खु णिच्चसो

परिवज्जए), तथा ब्रह्मचारी को स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द–इन पाचों प्रकार के इन्द्रिय विषयों का सदैव परित्याग करना उचित है (सद्दे रूवे य गंधे य रसे फासे तद्देव य, पंच विहे कामगुणे णिच्चसो परिज्जए)। हमारी नवीन परम्परा के संवाहक युवा मुनि पुंगव कहीं अधिक आत्म विश्वास के धनी हैं, उन्हें सुरुचिपूर्ण स्वादिष्ट, पौष्टिक, सरस आहारपान से ब्रह्मचर्य व्रत के पालन में बाधा पड़ने का कोई भय नहीं है, न ही उन्हें सभी इन्द्रिय विषयों के परित्याग की कोई आवश्यकता महसूस होती ।

पहली परम्परा में भव्य जीव संसार–देह से विरक्त होकर आत्म साधना के लिए मुनि दीक्षा लेकर जंगलों में जाकर एकांत में ध्यान–तपस्या करते थे, अभिनव परम्परा में वे स्व को गौण कर पर कल्याण की भावना से द्रवित होकर किशोरावस्था में ही दिगम्बर मुनि वेश धारण कर रहे हैं तथा भीड़ भरी घनी बस्तियों में जैन धर्म की प्रभावना करते हुए अपनी वैराग्यमयी नग्नता का प्रदर्शन कर रहे हैं तथा अनेक महामुनि/आर्यिका माताएं मंत्र–तंत्र–यंत्र, ज्योतिष विद्या, अंक विद्या के आलम्बन से श्रद्धालु जनों का कल्याण कर विपुल यश–ख्याति–पूजा व अर्थार्जन कर तथा अपना या अपने गुरुवर्य का इस नश्वर धरा पर नाम अमर करने हेतु भव्य अतिशय तीर्थक्षेत्रों, मंदिरों का निर्माण करने/कराने में अपना मुनि जीवन सफल कर रहे हैं। ठीक भी है,' अब जब इस युग में मोक्ष प्राप्ति का तो कोई विधान ही नहीं है, तो यश–ख्याति–पूजा की प्राप्ति में ही क्यों न अपने मुनि–जीवन को सफल किया जाय! पिछली परम्परा के मुनि/आचार्य सचमुच ही रुढ़ीवादी व संकुचित विचारधारा के रहे होंगे जो वे यह मानते थे कि 'ख्याति लाभ पूजा में रुचि रखने वाले महाव्रती प्रथम गुणस्थान में ही रहते हैं' (पू. आचार्य शिवसागर म.)। उस परम्परा के मुनि शरीर संस्कार से विरत रहते थे, उनकी धारणा थी कि शरीर से ममत्व त्यागना सर्वाधिक दुष्कर है, अतः वे शरीर से ममत्व क्षीण करने हेतु दुर्धर तपों के द्वारा शरीर कृष करने में विश्वास करते थे। वर्तमान के मुनि/आर्यिका माताएं भक्तजनों को प्रभावित करने के लिए सुदर्शन कान्तिवान भव्य आकृंति बनाए रखना भी आवश्यक समझते हैं, तेल मालिश (बादाम रोगन जैसे महंगे तेलों सहित) आदि अब अनेक महाव्रतियों की–वैयावृत्ति का महत्वपूर्ण अंग बन गई है। आखिर श्रोताओं व अन्यों को प्रभावित करने के लिए शरीर को कांतिवान, तेजोमय दिखना भी तो जरूरी है।

हमें सन् १९३५ की एक घटना स्मरण अनायास हो आयी। हमारे मेरठ नगर के बाहर जैन होस्टल में पूज्य चा. च. आचार्य शांतिसागर महाराज के संघस्थ एक मुनिराज (शायद मुनि श्री नमिसागर महाराज) ठहरे हुए थे। जून का महीना था, शिद्दत की गर्मी पड़ रही थी, सभागार में पंखे चल रहे थे पर मंच पर पंखा नहीं

लगा था, अतः आयोजकों ने एक पैडस्टल फैन लाकर मंच पर लगा दिया था। मुनिराज सभागार में पधारे। मंचासीन होते ही उन्होंने कहा कि 'भाई यह पंखा हटाओ, हमें इसकी हवा से उलझन होती है और हाँ माइक भी हटा दो, यदि श्रोता बंधु ध्यान से सुनेंगे तो हमारी आवाज वैसे ही सभागार के अंत तक पहुँच जायेगी, है न दकियानूसीपने की पराकाष्ठा ! वर्तमान के महाव्रतियों के शयन कक्ष (और यदि कुटिया बनाई गई हो तो खस की कुटिया) में गर्मी में पंखे, कूलर की तथा सर्दियों में हीटर की व्यवस्था करना जरूरी हो गया है। आखिर वे भी इंसान हैं। चतुर्थकाल जैसा उत्तम संहनन तो अब उनका है नहीं।

समय की मांग है कि समय के साथ चला जाए। अब निजवाणी व निज गुरुवाणी ही जिनवाणी है, अपना तथा अपने गुरुवर्य का प्रचार (प्रश्नमंचों, जीवन–नाटकों, भक्ति गीतों–भजनों आदि के द्वारा– जिनमें भाग लेने हेतु श्रावक–श्राविकाओं, बच्चों को आकर्षित करने के लिए मुनि श्री तथा उनके गुरुवर्य के विशाल फ्रेम्ड फोटो–चित्र सहित सुन्दर महंगे पुरस्कारों की उदार व्यवस्था भी आयोजकों को करनी होती है) ही जैन धर्म व आचार्य–साधु परमेष्ठी की सच्ची भक्ति है। प्राचीन परम्परा में मोक्ष मार्ग के पथिक साधु आत्म साधना में मंत्रादि सिद्ध करना निरर्थक व निषिद्ध कार्य समझते थे, अपने बहुमूल्य समय का दुरुपयोग समझते थे, यद्यपि उनकी तपस्या के प्रभाव से अनेक ऋद्धि सिद्धियों की लब्धि उन्हें स्वतः अनायास ही प्राप्त हो जाती थी जिसका उन्हें दूसरे के बताए बिना भान भी नहीं होता था तथा वे उस ऋद्धि–सिद्धि का उपयोग भी केवल धर्म पर आए किसी महान् संकट का निवारण करने के लिए ही करते थे (देखें–मुनि विष्णुकुमार की कथा)। नई परम्परा के साधु स्व उपकार से अधिक परोपकार की भावना से प्रेरित होकर विभिन्न मंत्रों को सिद्ध करते हैं तथा अपनी व अपने गुरुवर्य की लब्धि को प्रचारित भी करते हैं, कोई कोई तो अपनी लब्धि की वार्षिक जयन्तियाँ भी मना रहे हैं (अभी १४ जून को बालाचार्य श्री की लब्धि जयंती बड़ी धूमधाम से मनाई गई थी)। लगता है, अब सचमुच ही कुन्दकुन्दाम्नाय समयानुकूल नहीं रह गई है तथा प्रगतिशील समयानुकूल पुष्पदंत आम्नाय का युग प्रारंभ हो गया है। गाओ मंगल गान–

मंगलं भगवान वीरो, मंगलम् गौतमोगणी
मंगलम् पुष्पदंताद्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्

पारस सदन, आर्य नगर
लखनऊ– २२६ ००४

– अजित प्रसाद जैन
प्रधान सम्पादक

हमारी दुर्बलता और हीनता का कारण

— श्री जमनालाल जैन

[लगता है हम भ. महावीर पर्यन्त सभी जैन तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट अहिंसा धर्म के वास्तविक व्यवहारिक स्वरूप को भूल गए हैं। वह अहिंसा जीवन्त अहिंसा थी। वह निष्क्रियवादियों, बनियों–व्यापारियों, कायरों द्वारा अपनाई जाने वाली कोरी अति–सैद्धान्तिक अहिंसा तो कदापि नहीं रही होगी, अन्यथा जैन संस्कृति में चक्रवर्ती सम्राट तीर्थंकर नहीं होते, तद्भव मोक्षमागी नहीं होते तथा नारायण–प्रतिनारायण जैसे शलाका पुरुषों की तरह वे भी नरकों के दुख भोग रहे होते, न ही युद्ध के लिए सदा तत्पर रहने वाले क्षत्रियों ने जैन धर्म को अपनाया होता, न ही जैन संस्कृति ने यशस्वी सम्राट, सेनापति पैदा किए होते। अवश्य ही हमारे शास्त्रकारों से कहीं भारी भूल हुई है। अहिंसा शोध संस्थान् वैशाली व उस जैसी अन्य संस्थाओं को अहिंसा के वास्तविक व्यवहारिक स्वरूप पर गहन चिन्तन कर शोध कार्य करना चाहिए तभी उन संस्थानों की सार्थकता है।

प्रस्तुत लेख में सर्वोदयी विचारक वयोवृद्ध विद्वान श्री जमनालाल जी जैन ने गुजराती के सुप्रसिद्ध लेखक स्वतंत्र चिंतक व समाजसेवी स्वामी सच्चिदानंद जी के चिंतन को अपने लेख का आधार बनाया है। – सम्पादक)

ढाई हजार वर्षों के इतिहास की अधिकांश अवधि में भारत पर मुट्ठी भर अल्पसंख्यकों ने राज्य किया है। यूनानी, ईरानी, क्षत्रप, शक, हूण, कुषाण, सीदियन, गुर्जर, मालव, मुसलमान, अंग्रेज, पुर्तगाली आदि मुट्ठी भर विदेशियों ने भारत की कोट्याधिक जनता पर यथेच्छ रूप में शासन किया है। इसका मूल कारण भारतवासियों की अपनी धार्मिक अव्यवस्था है। जीवन को विलासी, दुर्बल तथा कुलक्ष्यगामी बना देने के कारण जनता लगातार देशी–विदेशी लोगों से पराजित होती तथा दुःखी होती रही है।

भारतीय धर्म प्रायः अहिंसावादी तथा परलोकवादी हैं। अतः उन्होंने जनता को शांति का ही उपदेश दिया है। प्रजा की इच्छाशक्ति को क्षीण करने के लिए त्याग और निवृत्ति के महान आदर्शों के गीत गाते रहे परिणामतः असंख्य शंकराचार्य, हेमचन्द्राचार्य, अमृतचन्द्राचार्य तथा शतावधानी तो पैदा हुए, किंतु सिकन्दर, नेपोलियन, कोलम्बस या वास्को डिगामा उत्पन्न नहीं हो सके।

हम युद्ध–प्रिय प्रजा नहीं हैं, हाँ, परस्पर कलह करने के प्रेमी अवश्य हैं। हम युद्ध आरंभ करने वाले कभी नहीं रहे। बाहरी लोग हम पर बराबर आक्रमण करते रहे, खैबर और बोलन के दर्रों से सैकड़ों हमले होते रहे। स्वयं हम तथा हमारे उपासनास्थल, मंदिर ध्वस्त होते रहे।

वर्ण व्यवस्था के कारण तथा निवृत्ति मार्गी धर्म के कारण एक अत्यन्त छोटा वर्ग शस्त्रधारी रहता है। इससे बड़ी मात्रा में कायरता रहती है। धर्म चिन्तन तथा अध्यात्मचिंतन करने वाले ब्राह्मणों और वैश्यों की जनता ने तो पूर्णतया शस्त्र विमुखता के कारण अपने जीवन में स्वर्ण (धन) तथा मिष्ठान्न को जो स्थान दिया, वैसा शक्ति को नहीं दिया। हमने स्वर्ण का ढेर तो जमा किया और मोदकों का भक्षण भी किया, किन्तु शक्ति के अभाव में शस्त्रधारकों से बार बार सरलता पूर्वक लुटते रहे, पराधीन होते रहे। हमारा चिन्तन ही इस प्रकार का रहा कि लोगों को शूरवीर, साहसी बनाने की अपेक्षा निवृत्ति मार्गी साधुओं के समूह बढ़ाते रहे। अत्याचारियों के आगे निस्तेज प्रजा अत्याचार करने का उत्तम क्षेत्र बन जाती है। यानी धर्म तथा अध्यात्म के द्वारा हम स्वयं ही अपने लोगों को अत्याचार का शिकार बनाते हैं।

यदि वर्ण व्यवस्था न हो, निवृत्तिमार्गी धर्म चिन्तन न हो तथा अतिरंजित (सिद्धांतवादी, निष्क्रिय) अहिंसावाद भी न हो तो पूरी प्रजा शस्त्रधारी बनेगी, शूरवीर होगी, इच्छायुक्त बनेगी तथा ऐसा साहसी व्यक्ति देश, प्रजा और धर्म को गौरव प्रदान करेगा, स्वाभिमान बढ़ायेगा, प्रभावशाली बनायेगा।

सेना तथा शस्त्रों की दुर्बलता (उपेक्षा) के कारण देश ने कितनी हानि उठाई है, इसकी स्वल्प झलक देखिये–

(१) ५२१ ईस्वी पूर्व से ४८५ ई. पूर्व के वर्षों में ईरान के तीन राजाओं ने सिंध तथा पंजाब पर राज्य किया। उनके नाम हैं साइरस, केम्बेसिस तथा डेरियर (दारा)। अकेले सिंध प्रदेश से ही उन्हें दस टन सोना प्राप्त होता रहा।

(२) ई. पूर्व ३२६ में सिकन्दर ने भारत के १२ राज्यों को जीता तथा अथाह धन–सम्पत्ति लूटी।

(३) ई. सन् ७१२ में खलीफा के भतीजे १७ वर्षीय अरब सेनापति मोहम्मद बिन कासिम ने सिंध को जीता और लूटा। अनेक युवक–युवतियों को गुलाम बनाकर ले गया और वृद्धों का कत्ल कर दिया। अनेकों को मुसलमान बनाया।

(४) ई. सन् ९७७ में सुबुक्त्तगीन ने पंजाब के राजा जयपाल को दो बार हराया, लाहौर आदि को बुरी तरह लूटा तथा विपुल सम्पत्ति ग़ज़नी ले गया।

(५) ई. सन् १००१ में उसके पुत्र महमूद ग़ज़नवी ने २६ वर्ष की आयु में लाहौर के राजा जयपाल को पुनः हराकर भारी लूटपाट की। बार–बार की हार से दुःखी राजा ने आत्मदाह कर लिया।

अगले २०–२२ वर्षों में महमूद ने ग़ज़नी से भारत पर लगभग १६ बार हमले किये और सबमें जीत हासिल की तथा हजारों मन सोना, चांदी, हीरे जवाहरात

लूटकर ले गया; नगरकोट, मथुरा, सोमनाथ के सुप्रसिद्ध मंदिरों को ध्वस्त किया, हजारों देव मूर्तियों को खंडित किया तथा लाखों स्त्री–पुरुष और बच्चों को गुलाम बनाकर ले गया और ग़ज़नी के बाजार में साग सब्जी के भाव बेच दिया।

(६) इसी तरह ११६४ ई. में कुतुबुद्दीनऐबक ने काशी–सारनाथ आदि के सैकड़ों मंदिरों को तोड़ा–लूटा। कन्नौज जीता, जयचंद राठौड़ को मारकर १४०० ऊंटों पर सोना–चांदी ले गया। ११६७ ई. में मोहम्मद ग़ोरी के एक अन्य सेनापति बख़्तियार ख़लजी ने मात्र २०० घुड़सवारों से नालंदा विश्वविद्यालय को नष्ट किया, पुस्तकालय जलाया और बौद्ध भिक्षुओं का कत्लेआम किया।

(७) इसी तरह चंगेज़ ख़ाँ, अलाउददीन ख़लजी आदि ने भयंकर लूटपाट की। ख़लजी ने ८ हजार घुड़सवारों के साथ देवगिरि पर चढ़ाई की। राजा रामचन्द्र राय हार गया।

(८) सन् १२६७–६८ ई. में अलाउद्दीन ख़लजी के सेनापति उलुग़खाँ ने गुजरात पर चढ़ाई की। राजा कर्णदेव तो भाग गया, रानी कमलावती पकड़ी गयी, उसे अलाउद्दीन ने अपनी बेगम बना लिया। कमलादेवी ने अपनी पुत्री को राजा से मंगवाकर शहजादे के साथ ब्याह दिया। उलुग़खाँ ने सिद्धपुर के रुद्रमहालय को तोड़ दिया और अपार सम्पत्ति लूट ली। खंभात को भी जीता, लूटा।

(९) सन् १३६७–६८ ई. में तैमूर लंग ने ६२ हजार अश्वारोहियों के साथ मुलतान और भरनेर पर चढ़ाई की। लाखों की संपत्ति छीन ली तथा एक लाख स्त्री–पुरुष गुलाम बनाये गये। फिर इनको कत्ल कर दिया गया।

यों तो और भी अनेक घटनाएं इतिहास में हैं। सवाल यह है कि ऐसी घटनाओं के बाद भी क्या हमारी आंखें नहीं खुलेंगी? शस्त्र–विमुख होकर क्या सचमुच हम पैसा बचा सके हैं? प्रतिष्ठा बचा सके हैं?

भारतीय धर्मों ने निवृत्ति, अतिवादी अहिंसा, अवतारवाद तथा प्रारब्धवाद जैसे विचार लोगों के दिमाग में भर दिये थे, इस कारण वे युद्ध विषयक विचार कर ही नहीं सकते थे। वर्ण व्यवस्था के कारण केवल क्षत्रिय ही, जो केवल एक प्रतिशत थे, युद्ध कर सकते थे।

गुजराती के सुप्रसिद्ध लेखक स्वतंत्र चिंतक विचारक स्वामी सच्चिदानंद जी की पुस्तक 'गीता और हमारे प्रश्न' से ये घटनाएं ऊपर उद्धृत की गई हैं। उन्होंने ऐतिहासिक आक्रमणों, लूटपाट, तोड़–फोड़ आदि की घटनाएं इसलिए दी हैं कि भारतीय धर्मों में अध्यात्म, वैराग्य, त्याग, तपस्या, अपरिग्रह की जो विचारधाराएं एकांगीरूप में फैली हैं, उनसे अहिंसा निःसत्व, निस्तेज और अव्यावहारिक हो

गयी। इतना ही नहीं, अहिंसा का आचरण केवल खान–पान, अकर्मण्यता और संसार को अनित्य, नाशवान मानने तक रह गया। तप के भेदों में भी अधिकतर खाने–पीने के त्याग की बातें रह गयीं। वास्तव में अहिंसा का तेज सक्रियता और रचनात्मक प्रवृत्तियों में, परस्पर सहयोग में, सेवा–सहायता में ही प्रकट हो सकता है। ईसाइयों ने मानव सेवा का जो काम किया– बीमारों की सेवा के लिए अस्पताल खोले, अनाथ बच्चों के लिए आश्रय स्थान और शिक्षालय चलाये, इससे ईसाई धर्म विश्वव्यापी बना। लोग भारतीय वर्ण व्यवस्था, छुआ–छूत, अभावग्रस्तता के कारण धर्मान्तरण करने लगे। हिन्दुओं की देखादेखी जैन समाज में भी 'शूद्रत्व', 'अस्पृश्यता' का भूत फैल गया। श्रमणों की आडंबरपूर्ण और अनावश्यक आहार–विहार चर्या को देखकर आज का युवा जैन वर्ग भी हिम्मत नहीं करता कि वह व्यवस्था करे। मानवता से हटकर हम धर्म का कितना ही जयजयकार करें, विश्व धर्म कहें, जीओ और जीने दो कहें, सब मंदिर की शास्त्र सभा तक ही सीमित रहता है।

स्वामी सच्चिदानंद जी ने इसी पुस्तक में एक जगह लिखा है,

"भारतीय प्रजा संसार की समृद्ध प्रजा नहीं है। सुख के साधनों से वंचित, भारी असुविधावाला जीवन जीनेवाली प्रजा है। गरीबी वाले १२६ राष्ट्रों में हमारा नंबर ११६वां है, अर्थात् हमसे गरीब केवल सात राष्ट्र हैं। इतनी अधिक दरिद्रता, भुखमरी, आवास–जल–वस्त्र तथा जीवन की अन्य आवश्यकताओं का भारी अभाव प्रजा के ५० प्रतिशत लोग भोग रहे हैं। इसके वास्तविक कारणों को जानने के प्रयास किसी धर्म या धर्मगुरु ने किये हों या इस विषय में कोई प्रवृत्ति की हो, ऐसा दिखाई नहीं देता। धार्मिक क्षेत्रवाले तो दरिद्रता के लिए पूर्वजन्मों के पापकर्मों की मोहर लगाते दिखाई पड़ते हैं। जो धर्म प्रजा के लिए प्राण तुल्य महत्वपूर्ण प्रश्नों का सच्चा निराकरण नहीं करता, वह धर्म अपनी प्रजा को ही उलझन में डालता है, मूक बनाता है। मुझे लगता है कि 'कर्म' के बारे में भारत के धर्मों ने प्रजा को अधिकतर किंकर्तव्यविमूढ़ बनाया है तथा गुमराह भी किया है। व्यक्ति तथा जनता की जो अधोगति हो रही है, उसके मोटे तौर पर निम्न कारण हैं–

(१) सभी लोग अपने पूर्वजन्मों के कर्मों के अनुसार इस जन्म में दुखी तथा सुखी होते हैं। (प्रारब्धवाद)

(२) ईश्वर की इच्छा के अनुसार ही सब लोग अपना–अपना भाग्य प्राप्त करते हैं। सुख–दुख आदि सब उसी का खेल है। परिश्रम और पुरुषार्थ करने पर भी लोग थक जाते हैं, किंतु उन्हें कुछ नहीं मिलता और बिना परिश्रम किये लोग मालामाल हो जाते हैं, इसमें ईश्वर की इच्छा ही कारण है। (ईश्वरवाद)

(३) कलियुग या इसी प्रकार का काल ही मनुष्य की ऊंची–नीची दशा का कारण है। जब–जब निश्चित प्रकार का काल प्रवर्तित होता है, तब–तब व्यक्ति तथा समाज वैसा ही परिणाम प्राप्त करते हैं इसमें कोई कुछ नहीं कर सकता। सैकड़ों वर्ष पहले ही शास्त्रों में वह सब लिख दिया गया है जो अब या आगे होने वाला है, वैसा ही हो रहा है। जब युग बदलेगा, तब सब ठीक हो.जायेगा। अतः धैर्यपूर्वक काल के परिवर्तन की प्रतीक्षा करनी चाहिए। (कालवाद, नियतिवाद)

(४) प्रारब्ध का साथ मिलने पर ही पुरुषार्थ कुछ कर सकता है। यों पुरुषार्थ तो यथार्थ है, पर उसकी सफलता तो प्रारब्ध के सहयोग से ही संभव है, अथवा किसी चमत्कारी पुरुष के आशीर्वाद से ही सुख प्राप्त हो सकता है।

उपर्युक्त चार तत्वों या किसी एक की प्रबलता से ही यह सब होता है। इसी के कारण प्रजा का कर्म विषयक उत्साह मन्द हो जाता है, इच्छाशक्ति शिथिल हो जाती है तथा प्रवृत्तियां संकुचित हो जाती हैं। जीवन–कला का शिक्षण निम्न कोटि का हो जाता है। आजीविका के साधन भी कम हो जाते हैं, परिणामतः दरिद्रता बढ़ती है।

आलस्य से उत्पन्न अप्रवृत्ति की अपेक्षा ज्ञानपूर्वक की जाने वाली अप्रवृति बुरे परिणाम लाती है। जब ज्ञानी पुरुष अपने कथित ज्ञान के द्वारा हजारों लोगों को प्रवृत्ति विमुख बनाता है, तो वह धर्म तथा अध्यात्म के द्वारा दरिद्रता रूपी अनिष्ट के स्थिर होने, बढ़ने तथा लोगों द्वारा उसे स्वीकार किये जाने की भूमिका तैयार करता है। इससे बढ़कर कुमार्ग और क्या है?..हमारे धार्मिक विश्वास प्रत्यक्ष कारणों को ढूंढ़ने की अपेक्षा अप्रत्यक्ष तथा काल्पनिक कारण तलाशने में अधिक रुचि लेते हैं।

भारत की प्रजा के दुःखों का एक बड़ा कारण चमत्कारप्रियता है। प्रजा की इस दुर्बलता का पूरा–पूरा लाभ उठाने के लिए धोखेबाज योगी, महायोगी, तांत्रिक तथा ज्योतिषी बाढ़ की तरह फैल गये हैं। कितने ही शिविर आयोजित कर दुर्बल दिमाग वाले स्त्री–पुरुषों को पागल बना रहे हैं। वे इस पागलपन को ही शक्तिपात कहते हैं। इससे अनेक गृहस्थों के घर उजड़े हैं, अनेकों के धंधे, नौकरी तथा स्वजन बिछुड़ गये हैं। इससे मस्तिष्क में एक प्रकार की बीमारी प्रविष्ट हो जाती है। मनुष्य अधिकाधिक स्वकेन्द्रित व कमजोर हो जाता है।

...जिस देश में ऐसी शक्ति का दूसरों में आह्वान कराने वाले योगी हों, तो वह देश इतना दीन–हीन, और कंगाल क्यों रहे? वह अन्न तथा पानी के अभाव में क्यों तड़पता है? योग तथा यौगिक तरीके से शक्ति का आह्वान न मानने वाले

मुट्ठीभर विदेशियों से मार क्यों खाता रहे? वह देश इतना निर्बल, कायर तथा व्यापार–वाणिज्य में चालाकी करने वाला, मायाचारी क्यों हो गया? जर्मनी, जापान, इंग्लैंड, अमेरिका या इजराइल आदि देशों में ऐसे योगी न होने पर भी, वे सब हमसे अधिक समृद्ध, शक्तिशाली, प्रामाणिक, चैतन्य सम्पन्न कैसे बन गये? आक्रान्ताओं के समक्ष कोई योगी क्यों नहीं आगे आया? अरे, इन तथाकथित नामधारी योगियों को तो उन आक्रान्ताओं ने कुत्ते की मौत मार डाला था।

कल्पना कीजिये एक मनुष्य नंगे पांव घूमता है, दूसरा निर्वस्त्र नग्न घूमता है। शीत, गर्मी, वर्षा के भारी कष्ट सहता है। कोई भोजन नहीं करता, या एकाशन करता है, हाथ में ही लेकर (बिना पात्र) खाता है, खड़े–खड़े खाता है। अधिक उपवास करता है, रस परित्याग करता है। बिना बिस्तर के चटाई पर सो जाता है। रोग हो तो भी दवा नहीं लेता। छाते का प्रयोग नहीं करता। धातु निर्मित पात्र का स्पर्श भी नहीं करता। किसी स्त्री से बातचीत तो दूर, उसका मुख भी नहीं देखता या भिन्न लिंग वाले का स्पर्श भी नहीं करता (चाहे छह माह का शिशु ही हो), वाहन का उपयोग नहीं करता। कोई दूध पर या फल पर ही रहता है, कोई ध्यान में घंटों बैठा रहता है, अखंड माला फेरता है, कुएं का पानी पीता है, हाथ पिसे आटे की ही रोटी खाता है, आहार में कोई बीज या बाल या सामने कोई चूहा–बिल्ली दीखने पर अन्तराय दोष मानकर आहार तज देता है, हाथों से केशों का लुंचन करता है। ऐसे अनेक दृश्य भारत में दिखाई पड़ते हैं। सामान्य मनुष्य इन्हें त्याग कहता है। मुझे लगता है कि हमसे कोई भूल हो रही है। **अपने पास यदि सुख तथा सुख देने वाली सामर्थ्य हो तो उसका उपयोग दूसरों के सुख के लिए प्रयुक्त करना ही त्याग है।**

दुर्भाग्यवश पुराण कथाओं तथा चमत्कारपूर्ण व्याख्यानों के द्वारा सामान्य मनुष्य के मस्तिष्क में इतनी अधिक अंध श्रद्धा लाद दी गयी है कि लोग वास्तविक त्याग को समझ ही नहीं पाते और त्यागविहीन सुखानुरागी ढोंगी (धूर्त) मनुष्यों को त्यागी समझकर तन–मन–धन लुटाते रहते हैं।

इस देश में दर्शन की अपेक्षा प्रदर्शन की अधिक पूजा होती है।

सरल, सहज तथा निर्दोष कुदरती मार्ग को पाप समझकर उसे लात मारते हुए ये अखंड संयमी बनने वाले मनुष्य ऐसे भयंकर तथा गहरे गड्ढ़े में गिर जाते हैं कि पुनः भाग्य से ही बाहर निकल पाते हैं।"

– अभय कुटीर, सारनाथ,
वाराणसी– २२१००७

———

कर्मफलभोग : एक समीक्षा

— समणी मंगलप्रज्ञा

दार्शननिक क्षेत्र में कर्म वेदन के विषय में तीन धारणाएँ प्रचलित हैं– अज्ञेयवाद, ईश्वराधीन और कर्मवाद। कुछ दार्शनिक मानते हैं कि सुख–दुःख के फल भोग का हेतु अज्ञात है, यह अज्ञेयवाद है। न्यायदर्शन के अनुसार ईश्वर की सहायता के बिना जीव को कर्म अपना फल नहीं दे सकते हैं।[१] कर्म जड़ होने के कारण अपना फल स्वयं नहीं दे सकते जैसे कि जड़ कुल्हाड़ी किसी चेतन व्यक्ति के द्वारा चलाये बिना स्वयं नहीं काट सकती।[२] ईश्वर कर्मफलाध्यक्ष है। कर्म का फल देने वाला कोई होना चाहिए। जैसे चोरी करने वाला चोर अपने आप उसका फल नहीं भुगतता। कोई न्यायाधीश होता है, दंड–नायक होता है, जो उसे दण्डित करता है, फल देता है। वैसे ही सारे जगत् को अच्छे और बुरे कर्म का फल देने वाला ईश्वर होता है। वह जीव को अपने कर्मानुसार अच्छे या बुरे फल देता रहता है।

जीव में कर्मफल भोग की शक्ति–

जैन दर्शन कर्मवादी दर्शन है। सुख–दुःख का फल अपने किये हुए कर्मों के द्वारा प्राप्त होता है। कर्म करने और उसका फल भोगने की शक्ति स्वयं जीव में निहित है। यह कर्मवाद है। जैन–दर्शन का मन्तव्य है कि कर्मफल के भोग के लिए किसी बाहरी शक्ति की आवश्यकता नहीं है।

कर्म जड़ हैं, वे यथोचित फल कैसे दे सकते हैं ? यह प्रश्न है। यह ठीक है कि कर्म पुद्गल यह नहीं जानते कि अमुक आत्मा ने यह कार्य किया है, अतः उसे यह फल दिया जाये, परन्तु आत्मक्रिया के द्वारा जो शुभाशुभ कर्म–पुद्गल स्कन्ध आकृष्ट होते हैं, उनके संयोग से आत्मा की वैसी ही परिणति हो जाती है, जिससे आत्मा को उसके अनुसार फल मिल जाता है।

कर्मफल दान शक्ति का निर्धारण–

जैनदर्शन के अनुसार कर्मबंध के समय ही कर्मफल–दान शक्ति (विपाक) का निर्धारण हो जाता है। उस फल विपाक की शक्ति के द्वारा ही जीव को कर्म का शुभाशुभ फल प्राप्त होता है। जीव कर्म करने के समय स्वतंत्र है, किंतु उसके उदयकाल में परतंत्र है। जैसे कोई पुरुष वृक्ष पर चढ़ने में स्वतंत्र हैं, किंतु प्रमादवश

नीचे गिरते समय वह परतंत्र है।[३] कहीं जीव कर्म के अधीन होते हैं तो कहीं कर्म जीव के अधीन होते हैं। ऋण देने में ऋणदाता और ऋण लौटाने में ऋण लेने वाला बलवान होता है।[४] कर्मफल भोग के समय जीव कर्म के अधीन हो जाता है। जीव द्वारा कृत शुभाशुभ कर्म अपनी विपाक शक्ति के द्वारा ही शुभाशुभ फल से संयुक्त हो जाते हैं।

कालोदायी अनगार की जिज्ञासा–

कालोदायी अनगार के द्वारा पापफलविपाक एवं कल्याणफलविपाक सम्बन्धी प्रश्न के समाधान से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है– कालोदायी अनगार ने पूछा– "भंते ! जीवों के पापकर्म पाप का फल विपाक कैसे देते हैं?" [५] कालोदायी को सम्बोधित करते हुये भगवान महावीर ने कहा– "कालोदायी ! जैसे कोई पुरुष मिट्टी की हांडी में पकाया हुआ मनोज्ञ, अठारह प्रकार के व्यंजनों से युक्त विषमिश्रित भोजन करता है। वह भोजन प्रारम्भ में अच्छा लगता है। उसके पश्चात् जब वह अपने अन्तर्निहित नियम से विपरिणत होता है, तब उसके रूप, वर्ण, गंध आदि विकृत बन जाते हैं और वह दुःखद होता है, सुख देने वाला नहीं होता।

कालोदायी ! इसी प्रकार प्राणातिपात से लेकर मिथ्यादर्शन शल्य तक अठारह ही पाप प्रवृत्तिकाल में अच्छे लगते हैं, पर जब वे अपने अन्तर्निहित नियम से विपरिणत होते हैं तब उनके रूप, वर्ण, गंध आदि विकृत बन जाते हैं। वह दुःखद होता है, सुख देने वाला नहीं। कालोदायी! इस प्रकार जीवों के पापकर्म पाप फलविपाक देते हैं।

जीवों के कल्याण कर्म कल्याण फल विपाक देने वाले होते हैं। उनकी भी यही प्रक्रिया है।"[६]

कर्मफलदान के नियम–

शुभ, अशुभ कर्म का तदनुसार फल उनमें अन्तर्निहित कर्म फलदान के नियम से ही प्राप्त हो जाता है। उसके लिये कर्म फलाध्यक्ष के रूप में ईश्वर की स्वीकृति आवश्यक नहीं है। कर्म के कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व में जीव स्वयं उत्तरदायी है। कर्म के फल वेदन की एक स्वयंकृत व्यवस्था है। कर्मबंध के समय उसकी स्थिति और फल देने की क्षमता का निर्धारण हो जाता है। जैसे ही स्थिति का परिपाक होता है, वैसे ही कर्म विपाकाभिमुखी होकर उदय में आ जाता है। जिस कर्म का उदय होता है उसी का वेदन होता है। जिसका उदय नहीं होता, उसका वेदन भी नहीं

होता है। जीव के सत्ता रूप में तो अनन्त कर्म परमाणु चिपके हुये हैं, किंतु उन सबका एक साथ फल भोग नहीं होता। जो कर्मपरमाणु फल देने के योग्य बन गये हैं वे ही उदय में आकर अपना फल देते हैं, अन्य नहीं देते। यह कर्मफलयोग की व्यवस्था है।

कर्मफल में असंविभाग–

जैन–परम्परा के अनुसार जीव स्वकृत कर्म का ही भोग करता है। किसी की भी कर्मफलभोग में सहभागिता नहीं हो सकती। शुभ–अशुभ किसी भी प्रकार के कर्म का हस्तान्तरण नहीं किया जा सकता। जो कर्म करता है वही उसके फल का भोग करता है। यह जैन–परम्परा का सर्वमान्य सिद्धान्त हैं। भगवान महावीर ने कहा जीव स्वकृत दुःखों का ही भोग करता है। परकृत एवं उभयकृत कर्म का वेदन नहीं किया जा सकता।[७] व्यक्ति मोह के वशीभूत होकर स्वयं के लिए, ज्ञातिजनों के लिए, अपनों के लिए विभिन्न प्रकार के दुष्कर्म करता है किंतु उस कटु कर्म के फल–भोग के समय मित्र, बन्धु–बांधव उसका साथ नही निभाते हैं। **उत्तराध्ययन** में इस तथ्य की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुयी है– "ज्ञाति, मित्र, पुत्र और बांधव व्यक्ति का दुःख नहीं बँटा सकते। वह स्वयं अकेला दुःख का अनुभव करता है क्योंकि कर्म कर्त्ता का अनुगमन करता है।[८] संसारी प्राणी अपने बन्धुजनों के लिए जो सामुदायिक कर्म करता है, उस कर्म के फलभोग के समय वे बन्धुजन बन्धुता नहीं दिखाते उसका भाग नहीं बँटाते हैं।"[९]

जैन परम्परा में 'श्राद्ध' आदि परम्परा मान्य नहीं है। श्राद्धकाल में प्रदत्त भोजन पितरों के पास पहुँचता है – इस मान्यता को जैन अस्वीकार करता है। यद्यपि जैन परम्परा में भी यह माना जाता है कि संयमी व्यक्ति के निर्जरा तथा साथ में पुण्य कर्म का बंध होता है किंतु साधु के पुण्य कर्म का फल उसे प्राप्त हो जाता है, यह जैन को मान्य नहीं है।

जैन दर्शन का यह सुनिश्चित मन्तव्य है कि प्राणी के मंगल–अमंगल, सुख–दुःख, लाभ–हानि आदि सारी परिस्थितियाँ स्वयंकृत कर्म के कारण हैं। आत्मा ने पूर्व में जैसे कर्म किये हैं उसी के अनुसार शुभ–अशुभ फल प्राप्त होता है। यदि दूसरे के दिये हुये सुख–दुःख आदि की प्राप्ति हो तो स्वकृत कर्म निरर्थक हो जाते हैं। अपने किये हुये कर्म के अतिरिक्त आत्मा को कोई कुछ नहीं दे सकता।[१०]

सुख का संविभाग भी अमान्य–

जैन परम्परा के साहित्य में स्थान–स्थान पर यह उल्लेख प्राप्त है कि जीव के दुःख को कोई नहीं बँटा सकता। सुख को बँटा सकता है या नहीं, इस सम्बन्ध में कोई वक्तव्य प्राप्त नहीं है। क्या इस स्थिति में ऐसा माना जा सकता है कि पाप कर्म के फलभोग में तो संविभाग नहीं होता, किंतु पुण्यकर्म के फल में संविभाग हो सकता है, जैसा कि बौद्ध परम्परा मानती है कि पुण्य की परिणामना हो सकती है। इस जिज्ञासा के संदर्भ में यह वक्तव्य है कि कर्म के फल से जो कुछ भी प्राप्त होता है वह सारा दुःख रूप ही है भले ही लौकिक दृष्टि से पुण्य के भोग को सुख माना जाता हो। आध्यात्मिक की दृष्टि से कर्म के उदय से प्राप्त होने वाला सब कुछ दुःख रूप ही है। **भगवती सूत्र** में कर्म निर्जरा को सुख कहा है – 'जे निज्जण्णे से सुहे'।[११] अध्यात्म की दृष्टि से वास्तविक सुख तो कर्म की निर्जरा ही है। निर्जरा के द्वारा ही आत्मा कर्म की गुरुता से हल्की होती है। ज्ञानी व्यक्ति के लिये सब कुछ (भौतिक पदार्थ) दुःख रूप ही है– 'दुःखमेव सर्वं विवेकिनः'।[१२] संसार एवं अध्यात्म की दृष्टि में सुख की अवधारणा में भेद है। संसार में जिसको सुख माना जाता है वस्तुतः वह दुःख ही है अतः दुःख में हिस्सा नहीं बँटा सकते। इस वक्तव्य का तात्पर्य यही है कि प्राणी के कर्मजनित शुभ–अशुभ फलभोग में किसी की भी सहभागिता नहीं हो सकती। प्राणी अपने कर्मफल को न तो किसी को दे सकता है और न ही दूसरों के वह ले सकता है। कर्म का कर्तृत्व जीव का है वैसे ही कर्म का भोक्तृत्व भी जीव का ही है। अन्य का संविभाग इसमें नहीं है।

– जैन विश्व भारती, लाडनूँ

---

१. न्यायभाष्य (संपा. गंगानाथ झा, पूना, १६३६) ४/१/२१ ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यस्य दर्शनात्
२. न्यायवार्तिक (संपा. वी. पी. द्विवेदी, बनारस, १६१६) ४/१/२१
३. गाथा (संपा. साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा, लाडनूँ, १६६३) १६/४३
कम्मं चिणंति सवसा, तस्सुदयम्मि उ परव्वसा होंति।
रुक्खं दुरुहइ सवसो, विगलइ स परव्वसो तत्तो।।
४. वही, १६/४४ कम्मवसा खलु जीवा, जीववसाइं कहिंचि कम्माइं।
कत्थइ धणिओ बलवं, धारणिओ कत्थई बलवं।।

५. अंगसुत्ताणि २, (भगवई) ७/२२४
६. वही, ७/२२६
७. अंगसुत्ताणि २, (भगवई) १७/६१ गोयमा। अत्तकडं दुक्खं वेदेंति, नो परकडं दुक्खं वेदेंति, नो तदुभयकडं दुक्खं वेदेंति।
८. उत्तरज्झयणाणि १३/२३
न तस्स दुक्खं विभयंति नाइओ,
न मित्त्वग्गा न सुया न वंधवा।
एक्को सयं पच्चणुहोई दुक्खं,
कत्तारमेवं अणुजाइ कम्मं।।
९. वही, ४/४
संसारमावन्न परस्स अट्ठा,
साहारणं जं च करेइ कम्मं।
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले,
न बंधवा बंधवयं उवेंति।।
१०. (अमृतकलश १) परमात्मा–द्वात्रिंशिका (ले. अमितगति, चूरू, १९६८)–३०–३१
स्वयंकृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयंकृतं कर्म निरर्थकं तदा।।
निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्यापि ददाति किंचन।
११. अंगसुत्ताणि २, (भगवई) ७/१६०
१२. पातंजलयोगसूत्र २/१५

———

तंत्र–मंत्र–यंत्र

वर्तमान में कुछ साधु–साध्वी ज़ैन अजैनों में अपने नाम व प्रतिष्ठा के लिए तंत्र–मंत्र एवं यंत्र के आडम्बरों को अपनाते जा रहे हैं। जो संजीवनी का काम करता है, ऐसे मूल मंत्र णवकार को हम भूलते जा रहे हैं। जैन व अजैन भाइयों से कहना है कि जीवन के निर्माण व कल्याण करने के लिए तंत्र–मंत्र–यंत्रों से बचें और अपनी श्रद्धा भावना णमोकार महामंत्र को समर्पित करें।

–श्री श्रेयांस मुनिराज

पुण्यानुबंधी पुण्य

— श्री मफतलाल मेहता 'मफतकाका'

जैन धर्म में तपस्या का अनुपम महत्व है। जैन धर्म के ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप ये चार मुख्य आधार स्तंभ माने जाते हैं। आदि तीर्थंकर भगवान श्री ऋषभदेव ने स्वयं उपवास कर तप का माहात्म्य प्रगट किया था। इसके बाद जैन धर्म के इतिहास पर प्रकाश डालें तो पता चलता है कि प्रायः सभी तीर्थंकरों ने उग्र तपरूपी सीढ़ी द्वारा ज्ञान दर्शन की साधना, आराधना कर केवलज्ञान की ही प्राप्ति की है।

ऐसे पवित्र तप द्वारा मानव को तमाम सर्वोत्तम आत्मिक सद्‌गुणों की प्राप्ति हुई है। धर्मग्रंथों में लिखा है कि तप रूपी अद्‌भुत कल्पवृक्ष का मूल संतोष है व शांति उसका मजबूत तना है। पांच इन्द्रियों का निग्रह उस वृक्ष की विशाल शाखा है। शील व चारित्र्य उसके अंकुर हैं, अभयदान उसके पत्ते हैं। सम्यक्त्व पूर्वक स्वर्गप्राप्ति उसका पुष्प है। करुणा उसकी शीतल छाया है और अनंत सुखों का धाम है। मोक्ष सुख की प्राप्ति उसका बेजोड़ और अंतिम सात्विक फल है।

इसके परिणामस्वरूप ही जैनधर्म में अनेक प्रकार की तपश्चर्या की जाती है। ऐसी तपस्याओं का अर्थ मात्र आहारत्याग ही नहीं बल्कि इसके परिणामस्वरूप जो पैसों की बचत होती है, उससे जो भूखे हैं उनकी भूख मिटाने का यत्न करना भी आवश्यक है।

जैनधर्म में नौ पुण्यों की चर्चा की गई है जिसमें दर्शाया गया है कि दया, दान, सदाचार, दूसरों के प्रति अनुग्रह, परोपकार व अपने मन पर संयम इत्यादि पुण्य की अभिवृद्धि में सहायक होते हैं। इसे 'पुण्यानुबंधी पुण्य' कहा जाता है। जीवन में दया, दान, परोपकार आदि की भावना उत्पन्न होने से हमारे भाव निर्मल बनते हैं, अशुभ कर्मों का बंध नहीं होता है। पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा होती है और इसीलिये उसे भाव धर्म कहा जाता है।

मानव की आत्मा की विकास यात्रा का तात्विक प्रारंभ पुण्यानुबंधी पुण्य से होता है, इसलिये नौ प्रकार के पुण्य का आदर सहित पालन करना आवश्यक है। इस नौ प्रकार के पुण्य संचय से पाप तथा आत्मा की अशुद्धि दूर होती है और भावना की परम विशुद्धि होती है।

ठाणांग सूत्र के नौवे ठाणे के तीसरे उद्देशक में नौ प्रकार के पुण्य का निम्न प्रकार वर्णन किया गया है–

नवविहे पुण्णे पण्णत्ते

अण्णपुण्णे, पाणपुण्णे, वत्थपुण्णे, लेणपुण्णे, सयणपुण्णे, मनपुण्णे, वयपुण्णे, कायपुण्णे, नमोक्कारपुण्णे।।

१. **अन्न–पुण्य**– भूखे, दुःखी अथवा जिन्हें अत्यंत आवश्यकता है ऐसे जीवों को भावपूर्वक अन्न प्रदान करना।

२. **पाण–पुण्य**–प्यासे को भावपूर्वक पानी पिलाना।

३. **वस्त्र–पुण्य**–जो वस्त्ररहित हैं, उनके बदन को ढँकने व शील की रक्षा के लिए वस्त्र प्रदान करना।

४. **लयन–पुण्य**–आश्रयहीन अर्थात् बेघर लोगों को आश्रय देना।

५. **शयन–पुण्य**–जरूरतमंद को सोने के लिये शैया प्रदान करना।

६. **मन–पुण्य**–मन से दूसरे जीवों के कल्याण की याचना व विश्व कल्याण की कामना करना।

७. **वचनं–पुण्य**–वचन द्वारा शुभ आशीर्वाद देना, दूसरों का भला हो ऐसे वचन बोलना, गुणवान व्यक्तियों के गुणों की प्रशंसा करना। वचन से दूसरों को सांत्वना देना।

८. **काय–पुण्य**–अपने शरीर का दूसरों के कल्याण के लिए उपयोग करना।

९. **नमस्कार–पुण्य**–विद्या, बुद्धि, उम्र, चारित्र्य आदि से जो बड़े हैं उनको आदरपूर्वक नमस्कार करना, उनका सम्मान करना।

ये नौ पुण्य आत्मा को पवित्र करते हैं, जिससे जीव को इच्छानुकूल सुखोपभोग मिलते हैं, यश, कीर्ति मिलती है।

ये नौ पुण्य अत्यंत व्यापक, हृदयस्पर्शी, करुणा से ओतप्रोत और महान हैं। ये जीवन में यथाशक्ति आचरण करने एवं हृदय में धारण करने योग्य हैं। इनमें सभी प्रकार की लौकिक तथा लोकोत्तर करुणा का समावेश है। भगवान ने भी अन्न, जल, वस्त्र आदि पुण्य को प्रथम स्थान दिया है और नमस्कार पुण्य को अंतिम स्थान दिया है, इससे स्पष्ट होता है किं नमस्कार से भी अधिक महत्त्व अन्न–जल के दान का है।

अन्न ही प्राण है अतः आहार त्याग के साथ ही साथ अन्न–दान करना भी अत्यंत आवश्यक है। परिग्रह त्याग के साथ–साथ साधर्मिकों व अन्य जरूरतमंदों की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने का ध्यान रखना चाहिए।

जैन धर्म में दान की अपूर्व महिमा है, निष्पक्ष दान देने से दान देने वाले एवं दान प्राप्त करने वाले दोनों को इसका लाभ होता है। इसलिए धर्म के चार भेदों में दान को सर्वप्रथम स्थान दिया है।

विश्वसंत पूज्य उज्जवलकुमारी जी कहती थीं कि तपस्या करने के बाद खाद्य पदार्थों पर जो रकम खर्च होती है उतनी रकम व अनाज भूख से पीड़ित गरीबों को दिये बिना जो तप किया जाता है, वह तप नहीं कहलाता है। तपस्या के निमित्त से जो अन्न की बचत होती है यदि उतनी रकम करुणा व अनुकंपा से दान नहीं दिया गया तो परिग्रह बढ़ता है और यही परिग्रह संपूर्ण पापों का मूल है, संसार परिभ्रमण का कारण है, महापाप है।

जैन धर्म में मरीजों की सेवा करना, ऐसा उपदेश बार–बार दिया गया है। एक बार भगवान महावीर स्वामीजी से भी गौतम स्वामी ने पूछा कि बीमार की सेवा करने वाला धन्य है या आपके दर्शन करने वाला। तब भगवान ने कहा कि जो बीमार की सेवा करता है वह धन्य है।

जैन धर्म में अनेक प्रकार के व्रत और तप होते हैं, प्रत्याख्यान किये जाते हैं, बहुत से जैन श्रावक–श्राविकायें रेशमी वस्त्र न पहनने की प्रतिज्ञा लेते हैं, क्योंकि रेशमी कपड़ा असंख्य कीड़े मारकर तैयार किया जाता है। इस प्रकार बहुत सी हिंसा जन्य वस्तुओं के उपयोग का त्याग किया जाता है। प्रत्याख्यान के दौरान जो धन बचता है उसका दान अवश्य करना चाहिए। वस्तुतः किसी भी प्रतिज्ञा अथवा तपस्या का पुण्य तभी तक प्राप्त होगा जब तक उसके परिणाम से एकत्रित संपत्ति का अभावग्रस्तों के लिए उपयोग किया जाता रहेगा।

जैन समाज पर विचार करें तो ऐसा लगता है कि प्रतिवर्ष देश व परदेश को मिलाकर एक करोड़ जैनों के द्वारा बारह महीनों में कम से कम तीन करोड़ उपवास होते होंगे। त्याग व तपश्चर्या में जैन समाज विश्व में बेजोड़ है। इतनी कठिन और नियमयुक्त तपश्चर्या, वह भी इतनी बड़ी संख्या में शायद ही किसी अन्य धर्म में चलती होगी। इस दृष्टि से देखें तो सुखी जैन कुल के, एक व्यक्ति के, एक दिन के भोजन का खर्च लगभग साठ रुपये होता होगा। इस प्रकार जैनों के तीन करोड़ उपवास से होने वाली बचत करीब एक सौ अस्सी करोड़ रुपये होती है।

अनंत उपकारी अरहंत परमात्मा ने हमें स्पष्ट रूप से समझाया है कि परिग्रह जैसा विश्व में कोई पाप नहीं है। परिग्रह यह आत्म–कल्याण के बीच आने वाला सबसे बड़ा ग्रह है। अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकांत ये भगवान महावीर के मुख्य तीन सिद्धांत हैं। अपरिग्रह सिद्धांत का आचरण करने से हजारों लाखों साधर्मिकों को तथा अभावग्रस्त लोगों को हम अन्न–वस्त्र और मकान दे सकते हैं, तथा अन्य किसी भी प्रकार का दान देकर हम उपयोगी हो सकते हैं। अपरिग्रह, सही अर्थ में भगवान महावीर की आत्मा की आवाज है। इसका यथाशक्ति आचरण करना आत्मशुद्धि का बेजोड़ मार्ग है।

आप विचार कीजिये कि एक सौ अस्सी करोड़ रुपये जैन समाज के लिए खर्च किये गये तो किसी भी जैन साधर्मिक बंधु अथवा बहन को सहायता या अनाज के लिए किसी के सामने हाथ फैलाना नहीं पड़ेगा। किसी को औषधोपचार व उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेश जाना हो तो उसे लोन स्वरूप राशि देकर, निराश्रितों को आश्रय देने के लिये, व्यापारी को ब्याज रहित लोन देकर सहायता की जा सकती है। इतना ही नहीं जैन समाज द्वारा गांव–गांव में धार्मिक पाठशाला, विद्यालय, कॉलेज़, दवाखाना, मेडिकल कॉलेज और युनिवर्सिटी भी स्थापित की जा सकती है। इससे न केवल जैन समाज का ही बल्कि हर धर्म, जाति के लोगों को इसका लाभ होगा जो किसी भी पुण्य से सर्वाधिक होगा। देश–विदेश में जैन धर्म का अभ्यास और शोध कार्य करने हेतु संपूर्ण शैक्षणिक आवश्यकताओं को पूर्ण करे ऐसी नालंदा जैसी युनिवर्सिटी बना सकते हैं, जिससे विद्वान, चिंतक और अन्य धर्म के लोगों को जैन धर्म के सिद्धांतों का ज्ञान मिलता रहे। इस प्रकार इस महान धर्म का तत्वज्ञान, इतिहास और उसमें निहित भावना का ज्ञान होगा। अनुकंपा की दृष्टि से हम किसी भी धर्म के लोगों को उदारतापूर्वक सहायता कर सकते हैं। इस विषय पर गंभीरता पूर्वक विचार करने की बड़ी आवश्यकता है, तभी जाकर समाज का सर्वांगीण विकास होगा।

खटाउ मेन्शन, उमर पार्क,
६५–क, भूलाभाई देसाई रोड, मुम्बई

जिनवाणी

निद्दं च न बहुमनिज्जा – दशवै. ८/४२

(अधिक नींद लेना अच्छा नहीं है।)

भक्तामर स्तोत्र

— डॉ. शशि कान्त

वर्तमान उत्सर्पिणी कालखण्ड के प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ ऋषभदेव की स्तुति में इस स्तोत्र की रचना हुई है। यह ललित संस्कृत भाषा में, वसन्ततिलका छन्द में, निबद्ध है। गेय तत्त्व और पद लालित्य इसके विशिष्ट प्रसाद गुण हैं, और इस कारण यह दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में समान रूप से लोकप्रिय रहा है, यहाँ तक कि दोनों ही सम्प्रदाय इसके रचयिता को अपने से सम्बद्ध सूचित करते हैं।

यह प्रचलित मान्यता है कि इस स्तोत्र की रचना किन्हीं मानतुङ्ग ने की थी और उनके सम्बन्ध में बहुत सी दन्त कथाएं भी प्रचार पा गई हैं। अंतिम श्लोक के अंतिम पद में "मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः" सें यह मान लिया गया कि इसके रचनाकार 'मानतुङ्ग' हैं, और सामान्य रूप से यह अर्थ किया गया कि जो इस स्तोत्र को कण्ठस्थ कर लेगा और इसका नियमित पाठ करेगा उसे मानतुङ्ग के समान मोक्ष–लक्ष्मी प्राप्त होगी। यदि मानतुङ्ग को मोक्ष–लक्ष्मी प्राप्त हो गई थी तो वह किस प्रकार इस पद की रचना करते? स्पष्ट है, यहाँ 'मानतुङ्ग' व्यक्तिवाचक नहीं है। 'लक्ष्मीः' बहुवचन है और इसका अर्थ भी केवल मोक्ष–लक्ष्मी नहीं होता।

देवरी (सागर) के पं. नाथूराम प्रेमी ने 'भक्तामर स्तोत्र' का संस्कृत अन्वय के साथ अर्थ देते हुए अपना पद्यानुवाद ११ मई, १६०७ ई. को प्रकाशित किया था। बीसवीं शती ईस्वी में हिन्दी में किया गया यह पहला अनुवाद था। इसकी छठी आवृत्ति जून १६२३ ई. में प्रेमी जी ने अपने जैन–ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय बम्बई से प्रकाशित की थी, परन्तु यह अब अप्राप्य है।

प्रेमी जी ने अन्वय के साथ जो अर्थ स्पष्ट किया है वह समीचीन है। उन्होंने 'मानतुङ्ग' का अर्थ 'मान से ऊंचे अर्थात् आदरणीय पुरुष' किया है और 'लक्ष्मीः' का अर्थ 'राज्य, स्वर्ग, मोक्ष और सत्काव्य रूप लक्ष्मी' किया है। इसमें इतना संशोधन अपेक्षित है कि 'आदरणीय पुरुष' से तात्पर्य मात्र पुरुष से नहीं वरन् व्यक्ति से है जिसमें स्त्री भी गर्भित है।

इस स्तोत्र की रचना कब हुई, इसका समाधान पश्चात्वर्ती रचनाओं पर इसके प्रभाव से कुछ–कुछ किया जा सकता है। पं. अमृतलाल शास्त्री ने इस विषय पर गवेषणा कर यह सूचित किया है कि १२वीं शती ईस्वी से प्राप्त रचनाओं पर ऐसा प्रभाव देखा गया है। इस प्रसंग में लगभग ११२५ ई. में कुमुदचन्द्राचार्य

द्वारा रचित 'कल्याणमंदिर स्तोत्र' का उल्लेख किया जा सकता है। अतः 'भक्तामर स्तोत्र' का रचनाकाल उससे पूर्ववर्ती होना चाहिये।

सन् १६६४ ई. में प्रकाशित 'भक्तामर–भारती' में पं. कमलकुमार जैन शास्त्री 'कुमुद' (खुरई) ने 'भक्तामर स्तोत्र' के १२१ अनुवाद संकलित किये हैं। इसके अतिरिक्त भी कुछ अनुवाद हुए हैं और श्री प्रकाशचंद्र जैन 'दास' (लखनऊ) का हिन्दी पद्यानुवाद 'शोधादर्श–१०' (नवम्बर १६८६) में प्रकाशित है। हिन्दी पद्यानुवादों में सर्व–प्राचीन श्री पाण्डे हेमराज का पद्यानुवाद है जिसकी रचना १६७० ई. में हुई थी। सत्रहवीं शती ईस्वी में ही श्री देवविजय, श्री आनन्दवर्धन, पं. विनोदीलाल और कवि धनुदास ने भी हिन्दी में पद्यानुवाद किये, तथा कवि जिनसागर ने मराठी में पद्यानुवाद किया। १८वीं शताब्दी ई. में केवल पं. नथमल का हिन्दी पद्यानुवाद ज्ञात है। १६वीं शती ईस्वी में पं. तिलकधर शास्त्री ने हिन्दी में, सेठ हरजीवनदास रायचंद ने गुजराती में, श्री शिवदास गिरधर कोलेकर ने मराठी में और श्री खतरगच्छीय ज्ञानमेरू ने राजस्थानी में, पद्यानुवाद किये। बीसवीं शती ईस्वी में १६०७ ई. में पं. नाथूराम प्रेमी और पं. गिरधर शर्मा ने हिन्दी में पद्यानुवाद किये। 'भक्तामर–भारती' में १६२० ई. से रचे गये ८५ पद्यानुवाद हिन्दी में, ७ मराठी में, ७ गुजराती में, १ मेवाड़ी में, १ राजस्थानी में, १ अवधी में, १ बंगला में, १ तमिल में, १ कन्नड़ में, १ उर्दू में, १ फारसी में और १ अंग्रेजी में, संकलित हैं।

इस स्तोत्र के सम्बन्ध में विशद विवेचन डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने 'सचित्र भक्तामर रहस्य' और 'भक्तामर–भारती' में 'आविर्भाव' के अन्तर्गत किया है जिसमें इसके विभिन्न पक्षों पर प्रभूत प्रकाश डाला गया है।

पं. नाथूराम प्रेमी के प्रसंगगत संस्करण की विशेषता संस्कृत अन्वय के साथ हिन्दी में अर्थ और गद्य में भावार्थ दिया जाना है जिससे स्तोत्र के भाव को सहज रूप से समझा जा सकता है। जो पाठक वास्तव में इसके अर्थ–भाव को ग्रहण करना चाहते हैं उनके लिये यह अत्यन्त उपयोगी है। इससे मानतुङ्ग व्यक्ति सम्बन्धी मिथक का भी निरसन होता है, यद्यपि प्रेमी जी ने इस प्रसंग पर मौन रहना ही श्रेयस्कर समझा और इसे 'श्रीमन्मानतुङ्गसूरि विरचित आदिनाथ स्तोत्र' ही सूचित किया। यह स्तोत्र 'भक्तामर स्तोत्र' प्रथम श्लोक के प्रथम पद के आदि में 'भक्तामर' शब्द आने से कहलाया और द्वितीय श्लोक के अन्तिम पद में 'प्रथमं जिनेन्द्रम्' की स्तुति में कहे जाने के कारण 'आदिनाथ स्तोत्र' कहलाया।

– ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ– २२६००४

———

वीर–जन्मस्थली कुण्डलपुर प्रकरण–एक विश्लेषण

–श्री अजित प्रसाद जैन

भगवान महावीर स्वामी के २६००वें जन्म महोत्सव वर्ष में उनकी जन्म स्थली की सही पहिचान को लेकर जो दुखद विवाद खड़ा हुआ, वह रुकने का नाम नहीं ले रहा। समस्त प्राचीन जैन वाङ्मय में उनकी जन्मस्थली के उल्लेख "विदेह देश स्थित 'कुण्डगामपुर–कुण्डपुर–कुण्डलपुर" के नाम से हुआ है तथा नाम को लेकर वस्तुतः कोई विवाद है भी नहीं।

इस समय बिहार प्रान्त के नालन्दा जिलान्तर्गत कुण्डलपुर (जो प्राचीन मगध देश की राजधानी राजगृह के सन्निकट है) दिगम्बर जैन समाज में भगवान महावीर की जन्मस्थली के रूप में बहुमान्य है तथा पूज्य गणिनी–आर्यिका श्री ज्ञानमती जी इसकी प्रबल समर्थक हैं। उन्होंने इस क्षेत्र के समग्र विकास का संकल्प किया है। वे अपने पक्ष के विद्वानों की तथाकथित राष्ट्रीय संगोष्ठियां, राष्ट्रीय महासम्मेलन भी आयोजित करा चुकी हैं तथा उनके पक्ष के समर्थन में लिखे गए आलेखों का व्यापक प्रचार भी कराया जा रहा है। फरवरी मास २००३ में इस कुण्डलपुर में विशाल पंचकल्याणक पूजा महोत्सव भी पू. माताजी के सान्निध्य में आयोजित होने जा रहा है।

दिगम्बर जैन पुराणकारों/कथाकारों ने यह तो बताया है कि भगवान की जन्म नगरी कुण्डग्रामपुर या कुण्डलपुर विदेह देश में स्थित थी पर यह कहीं निर्देशित नहीं किया कि विदेह देश की क्या भौगोलिक सीमाएं थीं तथा उसमें कुण्डलपुर नगरी कहाँ स्थित थी। जैन जगत के प्रख्यात विद्वान स्व. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री (आरा) सहित सभी भूगोलवेत्ताओं व प्राचीन इतिहासविदों ने बौद्ध व अन्य जैनेतर साहित्य के आधार से यह निर्धारित किया है कि वर्तमान बिहार प्रान्त में गंगा के उत्तर का प्रदेश विदेह तथा दक्षिण का प्रदेश मगध देश कहलाता था। डॉ. नेमिचन्द्र जी ने मगध देश की परिधि ८३३ मील बताई है। आज के बिहार प्रदेश में उस काल में एक तीसरा देश अंग भी समाहित है जिसे कोसी नदी विदेह से तथा चम्पा नदी मगध देश से अलग करती थी। इन **भूगोलवेत्ताओं का यह भी कहना है कि विगत ढाई हजार वर्ष में इस भौगोलिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।**

महावीर युग में भगवान महावीर के अनन्य भक्त महाराज श्रेणिक ने सम्पूर्ण मगध देश को जीतकर अपना एक–छत्र साम्राज्य स्थापित किया हुआ था, जबकि गंगा के उत्तर के प्रदेश विदेह देश व सन्निकट क्षेत्र में प्रजातन्त्र शैली के कई छोटे बड़े गणराज्य थे जिनमें सर्वाधिक सशक्त, समृद्ध और विशाल लिच्छवि गण राजाओं का वज्जिसंघ था तथा उनकी राजनगरी वैशाली अपनी व अपने गणराजाओं की समृद्धि तथा प्रजातंत्रात्मक सुशासन व्यवस्था के लिए दूर–दूर तक विख्यात थी। वज्जिसंघ में सम्मिलित सभी गणराजा अपने में से किसी एक को सर्वसम्मति से या बहुमत से अपना गणाधिपति (सामान्यतया जीवन पर्यन्त अवधि के लिए) चुनते थे जो महाराज कहलाते थे, तथा संघ परिषद के परामर्शानुसार शासन व्यवस्था सम्हालते थे। वज्जिसंघ के तत्कालीन गणाधिपति महाराज चेटक भगवान महावीर के नाना (या एक अन्य अनुश्रुति के अनुसार मामा) थे।

लिच्छवि–वज्जिसंघ की राजनगरी वैशाली के पुरावशेष पुरातत्वविदों एवं इतिहासविदों ने ऐतिहासिक–साहित्यिक शोध खोज से तथा भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा सन् १८८२ से १९१० तक कराए गए पुरा–उत्खनन में उपलब्ध हुए साक्ष्यों के आधार पर बिहार प्रान्त में गंगा नदी के उत्तर में मुजफ्फरपुर जिले के सरैया प्रखण्ड के बसाढ़ गांव के निकट पड़े प्राचीन टीलो के नीचे दबे खोज निकाले हैं तथा वैशाली के गढ़ के पुरावशेषों के समीप कुछ किलोमीटर की दूरी पर स्थित वासोकुण्ड नामक स्थल को उन्होंने भगवान महावीर की जन्मस्थली कुण्डग्रामपुर से चिन्हित किया है। जाहिर है, लिच्छवि गणराजाओं की रियासतें उनकी राजनगरी के आसपास ही चारों ओर थीं।

राष्ट्रसंत आचार्य श्री विद्यानंद मुनिराज, श्रमणराज आ. देशभूषण महाराज, स्थानकवासी आम्नाय के प्रमुख आचार्य इतिहास मनीषी स्व. श्री हस्तीमल महाराज, वीरायतन की प्रमुख–आचार्या श्री चन्दना जी, श्वेताम्बर आचार्य श्री विजयेन्द्र सूरि महाराज आदि प्रमुख संत व अधिकांश जैन विद्वानों तथा प्रायः सभी जैनेतर विद्वानों ने इतिहासकारों व पुरातत्वविदों की उपर्युल्लिखित खोज को सही मानते हुए उसका स्वागत किया है। श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी ने भी इसका समर्थन किया है। हमने भी इसके समर्थन में **शोधादर्श** व **समन्वयवाणी** के पिछले अंकों में विद्वज्जनों के कुछ महत्वपूर्ण लेख तथा अपने सम्पादकीय प्रकाशित किए हैं।

तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के महामंत्री डॉ. अनुपम जैन ने इस विषय पर हमें चार आलेख **शोधादर्श** में प्रकाशनार्थ भेजे हैं, यथा– (१) "कुण्डलपुर

जन्म स्थली–स्थापित परम्परा है"– ले. डॉ. अभयप्रकाश जैन, ग्वालियर, (२) "भगवान महावीर जन्म भूमि : कुण्डलपुर"– ले. डॉ. कृष्णा जैन, ग्वालियर, (३) "प्रश्न भगवान महावीर की जन्मस्थली का" – ले. श्री माणिकचंद पाटनी, इंदौर तथा, (४) "तीर्थ तर्क से नहीं श्रद्धा से बनते हैं, श्रद्धा तर्क की मोहताज नहीं होती" – ले. श्री रमेश कासलीवाल, संपादक वीर निकलंक।

इन सभी आलेखों में विद्वान लेखकों ने नालन्दा जिलान्तर्गत कुण्डलपुर को ही भगवान महावीर की सही जन्मस्थली के रूप में स्वीकार किए जाने का आग्रह किया है। सर्वोदयी विचारक तथा स्वतंत्र चिन्तक वयोवृद्ध भाई जमनालाल जैन (सारनाथ) ने भी एक आलेख "महावीर की जन्मभूमि नहीं, उनकी साधना को जीवन में उतारने का समय" भेजा है जिसमें उन्होंने बसाढ़ के समीप वासोकुण्ड को ही भगवान की सही जन्मस्थली प्रतिपादित किया है। ये सभी आलेख एकाधिक विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। अतः हम उनके **शोधादर्श** में पुनर्प्रकाशन की उपयोगिता नहीं समझते तथा विद्वान लेखकों से क्षमायाचना करते हैं।

नीचे हम वैशाली कुण्डग्राम के विरोध में दिए गए कुछ प्रमुख तर्कों का विश्लेषण कर रहे हैं–

(१) "महाराज सिद्धार्थ के देश विदेह और महाराज चेटक के देश सिन्धु को क्या पर्यायवाची माना जा सकता है?"

समाधान– **उत्तर पुराण** (आ. गुणधर कृत–९वीं शताब्दी) में तथा कतिपय अन्य परवर्ती कथाकारों ने **उत्तर पुराण** के ही आधार से वैशाली को सिन्धु देश की राजधानी बताया है पर यह कहीं निर्देश नहीं दिया है कि इस सिन्धु देश की भौगोलिक सीमाएं क्या थीं।) डॉ. योगेन्द्र मिश्र ने अपने शोध प्रबंध "An early history of Vaishali" में प्राचीन जैन साहित्य में भगवान महावीर या महाराजा चेटक के प्रसंग से सिन्धु देश या सिन्ध विषय शब्दों के आए प्रयोग के चार उद्धरण दिए हैं। उनका कहना है कि यह प्रयोग उस समय की प्रचलित परम्परा के अनुसार ही था। सिन्धु का एक अर्थ नदी होता है। इस प्रकार सिन्धु देश या सिन्ध विषय का अर्थ हुआ–नदी के तीर पर स्थित प्रदेश– इसका पश्चिम के सिन्धु सौवीरदेश से कोई सम्बन्ध नहीं। प्रो. (डॉ०) राजाराम जैन (आरा) भी इस प्रसंग में वर्णित सिन्धु देश का अर्थ, जल बहुल देश, करते हैं जो वैशाली का क्षेत्र आज भी है। यह १५ नदियों का देश (नदी पंचदशान्तर) भी कहलाता है। जो विद्वान इन अर्थों को स्वीकार न कर सिन्धु देश को विदेह से पृथक् देश मानते

हैं उन्हें यह शोध–खोज करनी चाहिए कि आखिर यह देश था कहाँ? यह इतिहास सम्मत तथ्य है कि वज्जिसंघ के गणतंत्र राज्य और मगध साम्राज्य की सीमाएं एक दूसरे से मिली हुई थीं और केवल गंगा नदी ही उन्हें विभाजित करती थी तथा मगध सम्राट अजातशत्रु ने भगवान महावीर के जीवन काल में ही वज्जिसंघ पर विजय प्राप्त कर वैशाली नगरी का विध्वंस किया था।

(२) "कुण्डलपुर छोटा सा कुण्डग्राम नहीं था प्रत्युत विदेह देश की महान वैभवशाली राजधानी थी जिसका विस्तार ६६ मील था। वह वैशाली के इतना निकट कैसे हो सकता है? वह वैशाली का कोई उपनगर या मुहल्ला नहीं था।"

समाधान– जहाँ तक हमारी जानकारी है, दिगम्बर जैन आम्नाय के किसी भी प्राचीन ग्रंथ में इसे विदेह देश की राजधानी नहीं बताया गया है। पुराणकारों ने केवल इसके वैभव और समृद्धि का ही वर्णन किया है। पूरे विदेह देश की कोई एक राजधानी हो भी नहीं सकती थी क्योंकि उसमें मल्ल क्षत्रियों, शाक्य क्षत्रियों आदि के और भी छोटे बड़े गणराज्य थे। कुण्डलपुर सी समृद्ध नगरी के वैशाली के सन्निकट मानने में यदि बाधा है तो यह तर्क तो नालन्दा जिलान्तर्गत कुण्डलपुर पर भी लागू होता है क्योंकि वह भी सम्पूर्ण मगध देश के सम्राट श्रेणिक–अजातशत्रु की वैभवशाली राजधानी राजगृह से केवल कुछ ही किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यदि उसे ही भगवान महावीर की जन्मनगरी माना जाय तो यह भी मानना पड़ेगा कि महाराज सिद्धार्थ मगध सम्राट के कोई सामन्त या करद राजा रहे होंगे। मगध सम्राट की उनकी राजधानी के इतना निकट किसी स्वतंत्र राज्य का अस्तित्व संभव ही नहीं था। कुण्डलपुर नगरी का विस्तार ६६ मील होना अतिरंजित अतिशयोक्तिपूर्ण काव्यात्मक वर्णन है, वह ऐतिहासिक तथ्य नहीं माना जा सकता। यातायात के आदिम साधनों वाले उस युग का तो कहना ही क्या, परवर्ती काल में जब हमारे इस देश में मौर्यों, गुप्तों, पठानों और मुगलों के विशाल साम्राज्यों की राजधानियां उन्नति और वैभव के शिखर पर थीं, इतने विस्तारवाला कोई नगर या इसके आधे–चौथाई विस्तार का भी कभी नहीं रहा।

(३) "नालन्दा जिलान्तर्गत कुण्डलपुर को विदेह में न सही महाविदेह देश में तो माना जा सकता है जिसमें मगध भी सम्मिलित था।"

समाधान– यह निरा कल्पित अनुमान है जिसका समर्थन किसी भी पौराणिक या प्राचीन ग्रंथ या अनुश्रुति से नहीं होता, न ही इतिहास सम्मत है।

(४) "२५५० वर्षों तक जिसे भगवान महावीर का जन्म स्थान माना जाता रहा उसे मात्र ५० वर्ष पूर्व सर्वोच्च स्थान पर बैठे नेता कुछ जैनेतर व विदेशी विद्वानों

की खोज के बहाने बदलने को तैयार हो गए। अब भी उसे मान्य कराने तथा केन्द्र व राज्य सरकार की मुहर लगवाकर जन साधारण को भ्रमित कराने का कुप्रयास जारी है।"

यह आरोप न केवल निराधार है तथा किसी सर्वोच्च नेता पर पूरी जानकारी किए बिना लगाना अशोभनीय भी है। और भी दुखद यह है कि आरोप लगाने वाले स्वयं समाज की एक बहुमान्य राष्ट्रीय संस्था के महामंत्री हैं।

सन् १६२६ में बा. कामताप्रसाद, अलीगंज अपनी पुस्तक 'भ. महावीर और भ. बुद्ध' में, बा० जुगलकिशोर मुख्तार सन् १६३० में 'अनेकांत' में प्रकाशित अपने आलेख 'भ. महावीर और उनका समय' में, श्री सी. जे. सी. शहा सन् १६३० में प्रकाशित अपनी विख्यात पुस्तक 'Jainism in North India' में सशक्त प्रमाणों के आधार से वैशाली के निकट के वासोकुण्ड (कुंडग्राम) को भ. महावीर की जन्मस्थली सिद्ध कर चुके थे।

नालन्दा जिलान्तर्गत कुण्डलपुर का इतिहास कुछ शताब्दियों पूर्व का ही है, **२५५० वर्ष पुराना नहीं।** जैसा कि हम अपने एक लेख में बहुत पहिले लिख चुके हैं, यह एक सर्वविदित कटु तथ्य है कि ईस्वी सन् की प्रारंभिक कुछ सदियों में भयंकर धार्मिक विद्वेष एवं राजनैतिक अस्थिरता के दौर में वर्तमान के बिहार प्रदेश में जैन धर्मावलंबियों को सुनियोजित व्यापक संहार का सामना करना पड़ा था। संहार से बचे ऐसे जैन जिन्होंने धर्म परिवर्तन नहीं किया, या तो जंगलों में भाग गए (जिनके वंशज आज आदिवासी सराक कहलाते हैं) या अन्य प्रदेशों को पलायन कर गए। उस दौर में जैन तीर्थक्षेत्रों का भी पूर्ण विध्वंस कर दिया गया था। ८००–६०० वर्ष पूर्व तीर्थंकरों के कल्याण क्षेत्रों की यात्रा के लिए निकले दिल्ली व निकटवर्ती प्रदेश के श्रावकों के संघ के साथ आए धर्मगुरुओं ने बिहार प्रदेश में भगवान महावीर के कल्याणक स्थलों को चिन्हित करने का प्रयास किया। उन्हें भगवान की शासन–प्रवर्तन–स्थली राजगृह के विपुलाचल पर्वत को (राजगीर नाम तथा पंच पहाड़ियों के कारण) चिन्हित करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। इसके कुछ ही वर्ष पूर्व श्वेताम्बर श्री संघ के साथ आए सूरि जी राजगिर के निकट ही भगवान महावीर की मोक्षस्थली पावापुरी तीर्थ की स्थापना भगवान के चरण प्रतिष्ठित कर व एक मंदिर का निर्माण कराकर कर चुके थे। दिगम्बर श्रावक संघ के धर्म गुरुओं ने भी उसे स्थापना–निक्षेप सिद्धान्त के आधार पर भगवान का मोक्ष कल्याणक तीर्थ स्वीकार कर लिया तथा उसके निकट ही नालन्दा के प्रख्यात बौद्ध विहार एवं विश्वविद्यालय के खंडहरों के समीप उसी

स्थापना–निक्षेप सिद्धान्त के आधार पर भगवान के जन्म कल्याणक तीर्थ कुण्डलपुर की स्थापना कर दी। इस स्थान का मूल नाम उस समय भी कदाचित् बड़ा गांव ही था जो आज भी है। इसमें वर्तमान दिगम्बर जैन मंदिर तो केवल १००–१२५ वर्ष प्राचीन ही हैं।

(५) "तीर्थ श्रद्धा से बनते हैं तर्क से नहीं, श्रद्धा तर्क की मोहताज नहीं होती।"

समाधान– यह ठीक है, श्रद्धा के कारण ही अतिशय क्षेत्र तीर्थ क्षेत्र बनते हैं न कि तर्क के आधार पर, किन्तु तीर्थंकरों के कल्याणक क्षेत्रों के लिए सम्यक् श्रद्धा चाहिए अन्यथा स्थापना–निक्षेप सिद्धान्त से तो अपने नगर–मुहल्लों में ही सब कल्याणक क्षेत्रों की स्थापना की जा सकती है।

वैशाली पर इतिहासकारों ने शोध खोज के आधार पर काफी कुछ लिखा है। जिसका संक्षेप में उल्लेख हमने इस आलेख में प्रस्तुत किया है।

वैशाली वज्जिसंघ में सम्मिलित सभी गणराजाओं की राजनगरी थी, संघ गणाधिपति का प्रासाद, संघ परिषद का सभागार, संघ की सेना व शासन सूत्र इसी में थे। सभी संघीय गणराजाओं के पुत्र वैशाली के राजकुमार थे (न कि केवल गणाधिपति के पुत्र) तथा उनमें से ही एक भविष्य में गणाधिपति होने वाला था। इसीलिए भगवान महावीर को वैशाली का राजकुमार तथा वैशालिय भी कहा गया।

जैन जगत के एक प्रख्यात विद्वान एवं पुरातत्वविद् ने अपने आलेख 'महावीर की जन्म स्थली : विदेह या मगध' में वैशाली के पक्ष में अपने उत्साह के अतिरेक में दो विचित्र तर्क दिए हैं–

(१) महावीर के पिता महाराजा सिद्धार्थ और नाना महाराजा चेटक दोनों क्रम से वैशाली गणतंत्र के गणपति चुने गए थे।

(इस तथाकथित तथ्य का कोई पौराणिक या साहित्यिक जैन या जैनेतर आधार उपलब्ध नहीं प्रतीत होता। वैसे भी उस काल में जीवन पर्यन्त अवधि के लिए गणपति चुने जाने की सामान्य प्रथा थी। महाराज सिद्धार्थ को अपने जीवन काल में ही गणपति पद से हटना पड़ा हो, यह अविश्वसनीय है।)

(२) महावीर को इस विशाल गणतंत्र का कुमारामात्य चुना गया और इस पद के माध्यम से उन्होंने जन सेवा और प्रजा की भलाई के अनेक कार्य किये थे।

(यह नितान्त कल्पित अनुमान है जिसका कोई भी पौराणिक–

ऐतिहासिक–पुरातात्विक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। यह अनुमान विद्वान लेखक ने वैशाली के पुरा उत्खनन में चौथी–पांचवी शती ई. की अर्थात् भगवान महावीर से ८००–६०० वर्ष बाद की प्राप्त एक सील से लगाया मालूम होता है जिस पर "वैशाली नायकुंडे कुमारामात्याधिकरण" शब्द अंकित है। कुमारामात्य गुप्त सम्राटों द्वारा अपने सामन्तों को प्रदत्त सर्वोच्च पदवी होती थी जिसके धारक सामन्त की पद–प्रतिष्ठा व अधिकार सम्राट के राजकुमारों के समकक्ष होते थे। वैशाली कई बार बसी व उजड़ी थी। गुप्त वंश के संस्थापक सम्राट चंद्रगुप्त प्रथम ने तत्कालीन वैशाली राज्य को विजय कर वहाँ की लिच्छवी राजकुमारी से विवाह किया था जो महान विजेता सम्राट समुद्रगुप्त की जननी थी। कदाचित् उन्होंने राजकुमारी के भाई को कुमारामात्य के पद से अलंकृत करके वैशाली का राज्यपाल बना दिया होगा तथा यह उसके अधिकरण (Authority) की सील होगी।

'दिशाबोध' के मई–अगस्त २००२ के अंक में उसके जागरूक सम्पादक डॉ० बगड़ा जी अपने लेख 'कुण्डलपुर या वैशाली–एक दृष्टि' में जन्मस्थली विषयक विवाद का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं–

"उक्त विवाद के केन्द्र में पूज्य आर्यिका गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी हैं, यह सर्वविदित है, माता जी कुण्डलपुर नालन्दा को भगवान महावीर की जन्म स्थली मानती हैं।––अपना साम्राज्य फैलाने की ही तरह, पहिले हस्तिनापुर में अपना गढ़ मजबूत बना लेने, तत्पश्चात मांगीतुंगी जी तीर्थ एवं बाद में ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग इलाहाबाद में अपना स्वतंत्र झंडा गाड़ लेने में सफल माताजी अब कुण्डलपुर में अपनी अलग पीठ खड़ा करना चाहती हैं और धनदोहन में निपुण माताजी की कार्यशैली का यह प्रचार का एक हिस्सा है ताकि सम्पूर्ण जैन समाज का ध्यान इस ओर खींचा जा सके और इसमें वे पूर्ण सफल मानी जा सकती हैं। देश के एकमात्र पीठाधीश (क्षुल्लक जी) उन्हीं के संघस्थ हैं।"

हम पूज्य ज्ञानमती माताजी या अन्य किसी महाव्रती साधु पर इस तरह का आरोप लगाना तो उचित नहीं समझते किन्तु पूज्य माताजी से यह सविनय निवेदन अवश्य करना चाहेंगे कि वे ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं पुरातात्विक तथ्यों की अनदेखी न करें।

हम इस लेख का समापन भाई जमनालाल जी के लेख के निम्नांकित अंश के उद्धरण के साथ कर रहे हैं–

"अवतारों की देखा देखी हमने भी तीर्थंकरों के आगे पीछे न जाने कितने

अलौकिक, कल्पित चमत्कार जोड़कर उन्हें अपने से दूर कर दिया है। हमने कह दिया कि महावीर की ऊँचाई सात हाथ थी। पर जब–मैंने बड़ोदरा के संग्रहालय में तीन हजार वर्ष पुरानी ममियां (शव) देखी तो वे तो हम जैसी साधारण देह वाली थी। मैंने अपने मित्र से कहा तो हंसकर रह गए। हम क्या कम होशियार हैं। हिन्दू धर्मावलंबी अपने देवताओं के वैभव का बढ़ा–चढ़ाकर वर्णन करते हैं तो हम क्या उनसे आगे नहीं बढ़ सकते? बढ़े हैं और खूब बढ़े हैं। इसमें क्या शक है कि हम वैभव के प्रशंसक और उपासक तो हैं ही–।"

* * * * *

चिंतन ओशो रजनीश का

कुछ ऐसे नासमझ हैं जो कहेंगे कि महावीर के हड्डी मांस विशेष ढंग के बने हुए थे, उन में खून नहीं दूध भरा था। लेकिन मैं आपको कहता हूँ कि उनके शरीर में बिलकुल वैसा ही खून था जैसा आपके शरीर में है, उनकी हड्डियां बिलकुल वैसी ही नश्वर थी जैसी आपकी हैं। यह मैं इसलिए कहना चाहता हूँ ताकि आप यह न भूल जायें कि महावीर होना आपकी भी संभावना है।—

उन ना समझों ने जिन्होंने यह प्रचार किया कि उनकी काया वज्र काया थी तो फिर आप महावीर नहीं हो सकते। जिन्होंने यह प्रचार किया कि महावीर की काया वज्र काया थी या उनका शरीर कोई दूसरे नियम पालता था, उन्होंने सारी को महावीर से वंचित कर दिया।

ए चलती हुई पीछे सदियों से, आदर और श्रद्धा के मोह में, हमने महावीर को, बुद्ध को अलौकिक बना दिया, उन्हें भगवान बना दिया कहा कि वे अलौकिक पुरुष हैं। हमने प्रेम में ये बातें कहीं, लेकिन हमें पता नहीं कहा कि यह प्रेम महंगा पड़ जाएगा। और यह प्रेम महंगा पड़ गया। अब हम उनकी श्रद्धा करते हैं और आदर करते हैं लेकिन कभी यह आकांक्षा हमारे भीतर पैदा नहीं होती कि हम भी महावीर बन जाएं।

— महावीर या महाविनाश' से साभार

चिन्तन कण

अमृत मंथन

– श्री सुखमाल चंद जैन

मनुष्य पर्याय में आकर मनुष्य क्या कर सकता है और क्या करता रहता है पर्याय के अवसान तक? जो वह कर सकता है– वही वह करता रहा ही है और इस समय भी कर रहा है। उसका यथार्थ सुन्दर चित्रण अमृत–मंथन की कथा के रूपक द्वारा इस प्रकार है।

वह संसार–सागर में से अमृत की प्राप्ति के लिये संसार–सागर का मंथन कर रहा है। इस मंथन में मथानी उसकी भावशक्ति का अचल पर्वत है जिसको उसके शुभ–संकल्प और अशुभ–संकल्प के छोरों से निर्मित रज्जु निरन्तर संचालन करती है– पर्याय के अंत तक करती रहेगी। नाना प्रकार के सुख–दुख हर्ष–विषाद उत्पन्न करने वाले पदार्थ और घटनायें इस मंथन के फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति को समय–समय पर प्राप्त होते रहते हैं। किन्तु अभी तक अमृत का कलश प्राप्त नहीं हुआ है। अमृत प्राप्त होते ही मंथन–क्रिया समाप्त हो जायेगी क्योंकि अमृतपान करने पर शाश्वत अनन्त ज्ञान–अनन्त दर्शन–अनन्त सुख–अनन्तवीर्य से संयुक्त अमर जीवन प्राप्त हो जायेगा और संसार सागर में पौद्गलिक शरीर धारण कर नरक–पशु–मानव–देव आयु वाले जीवनों में भ्रमण करना समाप्त हो जायेगा।

अमृत अंत में प्राप्त होगा। तब तक छोटे मोटे पदार्थ–घटनायें मंथन के परिश्रम के फलस्वरूप प्राप्त होती रहती हैं। इन संपत्ति वैभव स्वस्थ–शरीर, प्रगतिशील प्रेम संयुक्त परिवार, समाज, राष्ट्र, भोगोपभोग की क्षमता, यश, अधिकार, प्रतिष्ठा आदि सफल मंथन में और अपयश, दुर्गति, रोग–शोक, भय आदि असफल मंथन से प्राप्त होते हैं।

सफल मंथन की प्राप्तियों से संतुष्ट होकर और असफल मंथन से हताश होकर अनेक व्यक्ति मंथन को बंद भी कर देते हैं। किन्तु ऐसा करना जीवन शक्ति का अपघात है। मनुष्य–पर्याय में ही अमृत मंथन हो सकता है। अमृत प्राप्त करने पर ही संसार–सागर से जन्म–मरण करते रहने से मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

रूपक की कथा कहती है कि अमृत मंथन में सुमेरू पर्वत की मथानी थी– शेषनाग का रज्जु की तरह प्रयोग किया गया। शेषनाग के मुख के छोर को दानवों ने पकड़ा और उसकी दुम के छोर को देवों ने पकड़ा था।

मंथन में पहले सारे विश्व को समाप्त करने वाला विष निकला। देव–दानव भयभीत हो गये– उस विष को शिव–शंकर महादेव जी ने पी लिया लेकिन गले से नीचे उतरने नहीं दिया। महादेव जी तब से नीलकण्ठ हो गये क्योंकि विष के प्रभाव से उनका गला नीला हो गया।

मंथन फिर प्रारंभ हो गया। अब चौदह रत्न निकले समय–समय पर (कौस्तुम मणि, चंद्रमा, स्त्री, ऐरावत हाथी, उच्चैः श्रवा घोड़ा, इत्यादि)। लेकिन मंथन बंद नहीं हुआ क्योंकि दृढ़ निश्चय था कि अमृत की प्राप्ति अवश्य होगी और अमृत को प्राप्त होना ही पड़ा उस दृढ़ता के समक्ष।

इस समय भी सामान्यतः वैभव प्राप्त करने पर भी व्यक्ति मंथन बंद तो नहीं करते हैं किन्तु यही खेद है कि सुधा प्राप्ति का उनका लक्ष्य नहीं होता है। वैभव–अधिकार–प्रतिष्ठा से उनका मोह इन चौदह रत्नों की प्राप्ति तक ही उनको सीमित कर देता है।

इस वर्तमान पर्याय में सुधा प्राप्त नहीं हो सके तो विश्वास रखना उचित है कि भविष्य काल अनन्त है। उन पर्यायों में यह मंथन जारी रहेगा यदि व्यक्ति चालू मंथन को ध्यानपूर्वक, इसके सुधा प्राप्ति के लक्ष्य को समझकर, इस पर्याय में बंद न करे और दूसरी पर्याय में जारी रखने का संकल्प बनाकर इस पर्याय का समाधिपूर्वक भाव अन्त समय में रखे।

– एफ–३, ग्रीन पार्क (मेन), नई दिल्ली

मंगल श्लोक पर एक विचार

– जस्टिस एम. एल. जैन

यह सही है कि मंगल वचन 'मंगलम् भगवानवीरो..' प्राचीन नहीं है परन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं कि पुष्पदंत या अन्य कोई साधु अपने को कुन्दकुन्द के समान अग्रणी घोषित करने लगें। आज कल कई मुनि आचार्य बनकर ऐसा कर सकते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं। मैंने ८० सालों के अपने जीवन में जैन धर्म की अवनति–उन्नति दोनों देखे हैं परन्तु कभी अवनति इस सतह पर आ जाएगी सोचा भी नहीं था। मुझमें इतनी शक्ति न थी, न है कि घूम–घूम कर समाज को इसका अवबोध करा सकूं। – शायद तब

उत्पस्यते तव मम कोऽपि समानधर्मा
कालो हि निरवधि विपुला च पृथिवी।

– २१५, मन्दाकिनी एन्क्लेव,
अलकनन्दा, नई दिल्ली – ११००१६

अर्जुन माली (नाटिका)

(गतांक से आगे)

— श्रीमती सुधा जिन्दल

चौथा दृश्य

स्थान-- सौदामिनी का घर।

समय प्रातः १० बजे।

पात्र— मेखला व सौदामिनी।

(मेखला सौदामिनी को बाजार चलने को आमंत्रित करने आयी है। सौदामिनी चटाई पर बैठी चिट्ठी लिख रही है। मेखला पीछे से आकर उसकी आंखें बन्द कर लेती है।)

सौदामिनी— (अपनी चिट्ठी छुपाते हुए) "अरे मेखला छोड़ मुझे, जब देखो तब मुझे परेशान करती रहती है।"

मेखला— "मेरी प्यारी सहेली। किसको चिट्ठी लिखी जा रही है? मुझे भी तो बता।"

सौदा०— "चिट्ठी? कैसी चिट्ठी?"

मेखला— "अच्छा तो मुझसे छुपा रही है। मैं सब समझती हूँ। जब से रानी जी का गौना हुआ है तब से अपने को पटरानी समझने लगी है। जा मैं जा रही हूँ।"

सौदा०— "अरे–अरे, कहाँ जा रही है? पहले यह तो बता तू यहाँ क्यों आई थी ? मेरा सिर खाने?"

मेखला— "क्या? मैं सिर खाने आई हूँ? सौदामिनी! यदि यह बात है तो जब मैं एक दिन किसी कारणवश न आऊँ तो दूसरे दिन उलाहने क्यों देती है? ले मैं जा रही हूँ, अब कभी नहीं आऊँगी।"

सौदा०— "बस तेरी इन्हीं बातों पर तो मैं प्राण देती हूँ। कहाँ जायेगी मुझे छोड़कर? कितने नखरे हैं मेरी सहेली के। अच्छा यह बता तू यहाँ क्यों आयी थी?"

मेखला– "नहीं। पहले तू ये बता कि सारा घर आंगन छोड़कर पिछली कोठरी में चुपके–चुपके किसको प्रेम पत्र लिखा जा रहा है।"

सौदा०– "कुछ नहीं, बस ऐसे ही एक कविता लिख रही थी।"

मेखला– "कविता? अच्छा तो गीतों भरा प्रेम पत्र है। किन्तु तू कविता कब से करने लगी? कविता करने वालों के विषय में एक कहावत है, मालूम है तुझे?"

सौदा०– "क्या?"

मेखला– "जिन्हें होती विरह की वेदना वे कवि कहाते हैं।
उमड़ते अश्रुओं की नदी कविता में बहाते हैं।।"

"लेकिन तेरे साथ तो ऐसा कुछ भी नहीं है। क्या जीजा जी के विरह में....."

सौदा०– "हट! तू बड़ी नटखट है। बिना बात का बतंगड़ बनाना खूब आता है।"

मेखला– "अच्छा? तो फिर इस पीछे वाली कोठरी में क्या योग लगाकर ध्यान कर रही थी। अरे ला मैं भी तो देखूँ कि जीजा जी को चिट्ठी में क्या लिखा जा रहा है?"

सौदा०– "नहीं, मैं तुझे नहीं पढ़ाऊँगी। तू मेरी हंसी उड़ायेगी।"

मेखला– "देख सौदामिनी ! यदि तू मुझे यह चिट्टी नहीं पढ़ायेगी तो तू समझ ले कि सब सहेलियों के सामने तेरा भांडा फोड़ दूँगी।"

सौदा०– "नहीं, मैं तुझे नहीं दूँगी।"

(मेखला सौदामिनी को पकड़ लेती है और उसे गुदगुदाती है।) "अरे देगी कैसे नहीं?" (चिट्टी छीन लेती है। पढ़ती है।) "प्रियवर, मेरा मन यहाँ नहीं लगता है। आप तक पहुँचने को मन कुलाचे मारता रहता है, आप मुझे शीघ्र ही यहाँ से विदा करा ले जाओ। आपके बिना ये घर, नगर, वन, वाटिका सब मुझे काटने को दौड़ते हैं।"

मेखला– "अच्छा तो हम लोग अब तुझे काटने को दौड़ते हैं। वाह क्या वशीकरण कर डाला है हमारे जीजा जी ने। एक दिन में हमारी गुड़िया का दिल लूट लिया। हाय, हमको भी कोई ऐसा ही मिल जाता।"

सौदा०– "मेखला, मेरी चिट्ठी मुझे दे दो। बस अब पढ़ चुकी ना?"

मेखला– "अरे अरे! इतनी उतावली क्यों है? आगे भी तो विरह वेदना की

लपटें देखने दे। हाय, क्या प्रेमपाती है? चिट्ठी पाते ही भादों की बरसात में नदी–नाले लांघते हुए आधी रात को हमारी रानी से मिलने–चले आयेंगे राजा जी।"

सौदा०– "देख मेखला, यदि मेरी चिट्ठी नहीं देगी तो मैं तुझसे बात नहीं करूँगी।"

मेखला– (स्वगत) लगता है रूठ गई है। अब इसको चिट्ठी दे दूँ। नहीं तो बात बिगड़ जायेगी। "अच्छा ले। लेकिन सुन, मैं तुझे एक बहुत अच्छी बात बता रही हूँ। सुनकर फूल जैसा खिल जायेगी।"

सौदा०– "क्या?"

मेखला– "वह जो तू पचरंगी चूड़ियां खरीदना चाहती थी ना। मैंने वैसी–चूड़ियां हाट वाले मनिहार के पास देखी हैं। बहुत सुन्दर–सुन्दर चूड़ियां हैं उसकी दुकान में। एकदम तेरे लहंगे से मेल खाती हुई।"

सौदा०– "क्या? (खुशी से) तू सच कह रही है ना? उसके पास रेशम की चोटी भी तो होगी और उसके पास शीशे जड़े हुए कड़े भी तो होंगे ना?"

मेखला– "हाँ री सखी, ये सब उसकी दुकान में है। अब तू झटपट तैयार हो जा। जिससे दिन डूबने से पहले ही हाट से वापस घर आ जायें।"

सौदा०– "बस–बस तू थोड़ा ठहर, मैं अभी आती हूँ।" (अन्दर चली जाती है। फिर हाथ में बटुआ लेकर निकलती है।) "तू कितनी अच्छी है मेरी बहना।"

मेखला– "बस–बस। बहुत अधिक चाटुकारिता मत कर। अभी कुछ समय पूर्व मैं बहुत बुरी थी। किन्तु जब तेरा स्वार्थ पूरा होने लगा कि बस मैं बहुत अच्छी हो गई।"

सौदामिनी– "अपने काम के लिए तो गधे को भी बाप कहना पड़ता है। और तू तो मेरी सखी है वह भी सबसे प्रिय।"

मेखला– "आज कितने दिन बाद तो हाट जा रहे हैं। अन्यथा अब तो घर से निकलने में बड़ा डर लगता है। पता नहीं अर्जुनमाली कहाँ मिल जाये।"

सौदा०– "चल आ गुंइया गुंइया चलें।"

(दृश्य समाप्त)

क्रमशः

– अजिताश्रम, गणेशगंज,
लखनऊ – २२६०१८

भगवान महावीर के चरणों में

— श्री शान्तिलाल के. शहा

हे ज्योति–पुंज जय वीर, सत्य का ज्ञाता–दृष्टा तू।
हे महाप्राण, संसारी जन–मन का जीवन–सृष्टा तू।।
हे जिन प्रभात, तू सघन तमस से घिरती संस्कृति का,
हे निर्विकार, परिशोधक मानवता की संस्कृति का।।१।।

तूने अपने अन्तरतम का सोया आत्म जगाया।
तूने पर से परमात्मा तक अपने को पहुँचाया।।२।।

सीमित नर तन में असीम की न चेतना जागी।
जन्म–जन्म की धूमिल कलुषित मोह–चेतना भागी।।३।।

तेरी वाणी जग–कल्याणी, प्रखर सत्य की धारा।
खण्ड–खण्ड हो गई दंभ, अंधाग्रह की कारा।।४।।

सत्य एक है, उस पर तेरे–मेरे का क्या बन्धन
विश्व समन्वय कर देता है, तेरा यह उद्‌बोधन।।५।।

जाति–पंथ भेदों से ऊपर, तू सबका सब तेरे।
देश–काल वह कौन, तुझे जो सीमाओं में घेरे।।६।।

तू अनन्त है, अजर–अमर है तेरा जीवन दर्शन।
अखिल विश्व का तव चरणों में वन्दन, वन्दन, वन्दन।।७।।

कुसुम बंगला, राजवाडा,
गणेश दुर्ग, सांगली– ४१६४१६

आध्यात्मिक गीत

– विद्यावारिधि डॉ. महेन्द्र सागर प्रचंडिया

जागो भाई, हुआ सबेरा।

मोह–नींद में गहरे सोये,
जीवन के छन यों ही खोये,
नहीं किया अब तक जो करना, करने को है काम घनेरा।
जागो भाई, हुआ सबेरा।।१।।

जीवन भर काया को धोया,
मूर्च्छा में अपने को खोया,
नहीं मिला परितोष अन्त तक, संचय किया यहाँ बहुतेरा।
जागो भाई, हुआ सबेरा।।२।।

पर को गहकर मान बढ़ाया,
वैर–विरोध नहीं बिसराया,
कुटिल कुचाली चालें चलकर, मायावी घेरे को घेरा।
जागो भाई, हुआ सबेरा।।३।।

अज्ञ–अंधेरा हरदम भाया,
सत–स्वरूप को जान न पाया,
पर–दोषों को किया उजागर, निबट न पाया मेरा–तेरा।
जागो भाई, हुआ सबेरा।।४।।

लगे परिधि पर चक्कर सारे,
मन भाए आकर्षन न्यारे,
नहीं पहुँच पाया हूँ अब तक, जहाँ केन्द्र पर नहीं अंधेरा।
जागो भाई, हुआ सबेरा।।५।।

– मंगल कलश
३६४, सर्वोदयनगर, आगरा रोड
अलीगढ़ (उ.प्र.) – २०२००१

———

क्षणिकाएं

– श्री रमा कान्त जैन

आत्मा का चिन्तन करते–करते जो हो रहे आत्मप्रचार में लीन।
ऐसे साधु आज जग में कहलाते हैं सच्चे और शालीन।।

** ** **

प्रचार तंत्र उनका है प्रबल व्यापक।
उसके वे ही नियन्ता और नियामक।।

** ** **

प्रवचन कुशल वे हैं भाई।
ओशो शैली खूब उन्होंने अपनाई।।

** ** **

अपरिग्रह का लगाते हैं वे नारा।
परिग्रह संजोये कैसे, रहता चिन्तन सारा।।

** ** **

क्या खूब साधु–सन्त हैं हमारे।
चिड़ियाघर और जेल हो आये बेचारे।।

** ** **

जयन्तियां क्या खूब उनकी यहाँ हैं मनती।
नाचती नर–नारी टोलियां खूब हैं जमती।।

** ** **

धर्म–व्यापार की अब नई शैलियां विकसित होने लगीं।
महावीर जी को लाडू चढ़वाने हेतु बोलियां लगने लगीं।।

** ** **

पटाखे वालों ने देखिये यहाँ किसको क्या बना दिया।
लादेन को बम, फिल्मतारिकाओं को फुलझड़ियां बना दिया।।

** ** **

ज़माने ने कैसी करवट ली, ज़माने को क्या हो गया?
महावीर–उपदिष्ट मानव धर्म मात्र मुनिभक्ति–धर्म हो गया।।

** ** **

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.
प्रगति प्रतिवेदन वर्ष २००१–२००२

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र. का गठन सन् १९७६ ई. में भगवान महावीर स्वामी का २५००वां निर्वाण महोत्सव मनाने के लिए राज्य सरकार द्वारा गठित "श्री महावीर निर्वाण समिति, उ.प्र." की उत्तराधिकारी संस्था के रूप में जैन धर्म के सभी सम्प्रदायों के महानुभावों के सहयोग से हुआ था। समिति के गठन के तुरन्त बाद ही उसे सन् १८६० के अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड करा लिया गया था जिसका नियमानुसार नवीकरण कराया जाता रहा है। तबसे समिति अपनी सभी प्रवृत्तियों का सुचारू संचालन करते हुए निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। समिति का पिछला प्रगति प्रतिवेदन (वर्ष २०००–२००१) **शोधादर्श**–४५ (नवम्बर–२००१) के पृष्ठ ६३–६५ पर प्रकाशित है। अब यहाँ वर्ष २००१–२००२ का प्रगति प्रतिवेदन प्रस्तुत है।

विगत वर्ष (१ अप्रैल, २००१ से ३१ मार्च, २००२) में भी समिति की सभी प्रवृत्तियों का सुचारू सम्पादन किया गया। संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है –

(१) तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र शोध पुस्तकालय–

इस पुस्तकालय की स्थापना श्री मुन्नेलाल कागजी जैन धर्मशाला ट्रस्ट कमेटी के सौजन्य से निःशुल्क उपलब्ध कराए गए धर्मशाला के एक बड़े कक्ष में वर्ष १९७६ की श्रुतपंचमी को की गई थी तथा इसका विधिवत उद्घाटन अक्टूबर १९७६ में तत्कालीन उच्च शिक्षा मंत्री माननीय डॉ. राम जी लाल सहायक के कर कमलों से कराया गया था। धर्मशाला ट्रस्ट द्वारा पुस्तकालय के लिए जो कक्ष उपलब्ध कराया हुआ था, वह श्री मंदिर जी के अंदर स्थित होने के कारण पाठकों को असुविधाजनक तो था ही, अब पुस्तकालय की आवश्यकताओं के लिए अपर्याप्त भी हो गया था। पुस्तकालय के लिए एक अपना भवन क्रय करने का भी प्रयास किया गया, पर अन्त में उसे व्यवहार्य नहीं समझा गया।

दिनांक १ अप्रैल, २००१ से पुस्तकालय को धर्मशाला के भूतल पर ट्रस्ट कमेटी द्वारा विशेष रूप से निर्मित कराए गए एक बड़े कक्ष में तथा वाचनालय को उससे संलग्न कक्ष में स्थानान्तरित कर दिया गया। धर्मशाला ट्रस्ट ने इसका किराया रु. ८००/– मासिक निर्धारित किया है तथा समिति को रु. १,००,०००/– अग्रिम किराए के रूप में ट्रस्ट को देने पड़े हैं जिसके लिए एक विधिवत करारनामा

निष्पादित करा लिया गया है। पुस्तकालय व वाचनालय कक्षों को आवश्यक फर्नीचर व साज–सज्जा से सज्जित कर दिया गया है। हमारे अध्यक्ष श्री लूणकरण नाहर जी ने अपने व्यय से पुस्तकालय कक्ष के फर्श की पूरी कारपेटिंग कराई तथा पुस्तकालय के बढ़े हुए व्यय की आंशिक पूर्ति के लिए रु. ५,०००/– की विशेष सहयता प्रदान की। हमारे उपमंत्री श्री नरेशचंद्र जी ने भी रु. १,०००/– की सहायता प्रदान की। एक अजैन बन्धु डॉ. आर. के अग्रवाल (सी–२४५, साउथ सिटी, लखनऊ) ने भी पुस्तकालय की कार्य प्रणाली से प्रभावित होकर साज–सज्जा हेतु रु. १,००१/– की विशेष सहायता प्रदान की। हम इन तीनों महानुभावों के विशेष आभारी हैं।

नवीन कक्ष में स्थापित किए जाने के साथ पुस्तकालय के खुलने का समय बढ़ाकर प्रातः ८.०० बजे से अपराह्न २.०० बजे तक कर दिया गया है तथा पुस्तकालय व्यवस्थापिका का वेतन भी बढ़ाकर रु. १,२००/– मासिक कर दिया गया है।

नवीन कक्ष में स्थापित हो जाने के उपरान्त पुस्तकालय की लोकप्रियता में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। अब तक समिति के सदस्यों के अतिरिक्त पुस्तकालय के अपने सदस्यों की संख्या कुल १२ थी जो २००१–२००२ में बढ़कर ३३ हो गई और अब तो चारबाग ही नहीं आसपास के क्षेत्रों का कदाचित् ही कोई जैन परिवार होगा जो पुस्तकालय का सदस्य न बना हो।

विगत वर्ष में पुस्तकालय में रु. ४१,५०१/– मूल्य की ४१८ पुस्तकों की वृद्धि हुई जिनमें रु. ३,०७३/– मूल्य के ७३ धार्मिक ग्रंथ हैं। धर्म साहित्य के अतिरिक्त अन्य सभी पुस्तकें राजा राम मोहन राय पुस्तकालय प्रतिष्ठान, कोलकाता तथा उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग (पुस्तकालय कोष्ठक) से पुस्तक अनुदानों के रूप में तथा कतिपय दातारों से भेंट स्वरूप ही प्राप्त हुई हैं। धर्म साहित्य के क्रय पर रु. १,१२४/– का व्यय किया गया तथापि अधिकांश धर्म साहित्य भी विभिन्न लेखकों एवं दातारों से भेंट स्वरूप ही प्राप्त हुआ है। इस वर्ष शिक्षा विभाग (पु. को.) के सौजन्य से १,७५०/– का अनावर्तक अनुदान तथा रु. ५,६६२/– मूल्य के दो बुक केस (शीशे की अलमारियां) भी प्राप्त हुए, वाचनालय जिसमें केवल धार्मिक पत्र–पत्रिकाएं ही रखी जाती हैं, में पढ़ने वालों की संख्या भी १०–१२ से बढ़कर ४०–४५ प्रतिदिन हो गई।

(२) शोधादर्श–

समिति की चातुर्मासिक शोध पत्रिका के तीनों अंक समय से प्रकाशित हुए। पत्रिका की लोकप्रियता में निरन्तर वृद्धि हुई और २१ सुधी पाठक इसके नए अभिदाता बने। आज यह पत्रिका देश की उच्च स्तरीय धार्मिक शोध पत्रिकाओं

में गिनी जाती है। वर्ष के तीनों अंकों (४३–४५) के २५८ पृष्ठों में प्रकाशित उपयोगी पठनीय सामग्री की प्रबुद्ध वर्ग द्वारा व्यापक सराहना की गई। पत्रिका के सम्पादन–प्रेषण में किए गए बहुमूल्य योगदान के लिए मैं अपने सहयोगी सम्पादक श्री रमाकान्त जी का विशेष आभारी हूँ। इस वर्ष शोधादर्श के प्रकाशन–प्रेषण पर कुल व्यय रु. २६,७६६/– हुआ।

(३) तीर्थंकर छात्र सहायता कोष–

इस वर्ष ३४ विपन्न पर धर्मनिष्ठ छात्र–छात्राओं को अध्ययन जारी रखने के लिए सहायता प्रदान करने पर रु. १०,११२.५० का व्यय किया गया। प्रबंध समिति के माननीय सदस्य श्री महेन्द्र प्रसाद जैन ने इस कोष का भार सम्हालने में बहुमूल्य योगदान किया। इसके लिए मैं उनका विशेष आभारी हूँ।

(४) महावीर जन कल्याण निधि–

इस वर्ष ४ असहाय महिलाओं को वस्त्र–औषधि हेतु सहायता प्रदान करने में रु. ४,४१०/ का व्यय किया गया। हमारे उपमंत्री श्री रमाकान्त जी ने निधि की व्यवस्था सम्हालने में बहुमूल्य योगदान किया।

समिति के लेखे का आडिट इस वर्ष भी सर्वश्री ए. जिन्दल चार्टर्ड एकाउंटेंट्स द्वारा किया गया। पुस्तक अनुदानों के अतिरिक्त कुल प्राप्तियां रु. ४,६७,८७१.४३ तथा व्यय रु. १,३१,२६३.३५ हुआ। प्राप्ति–व्यय की विवरण तालिका अगले पृष्ठ पर अंकित है।

चिर वियोग–विगत वर्ष हमारी समिति के संस्थापक–आजीवन सदस्य कर्मठ समाजसेवी वयोवृद्ध (६० वर्षीय) श्री सुकुमार चन्द्र जैन का मेरठ में तथा प्रबंध समिति के सदस्य ७५ वर्षीय श्री किशनचंद्र जैन का लखनऊ में निधन हो गया। भाई सुकमार चंद्र जी का हमें सदा ही मार्गदर्शन प्राप्त होता रहता था तथा श्री किशनचंद्र जी का भी समिति की गतिविधियों में सक्रिय योगदान रहा था। हम दिवंगत आत्माओं की सद्गति और चिरशांति की कामना करते हैं।

समिति के अध्यक्ष श्री लूणकरण जी नाहर का सक्रिय सहयोग एवं मार्गदर्शन हमें निरन्तर मिलता रहा जिसके लिए हम उनके विशेष आभारी हैं। उपाध्यक्ष श्री कन्हैयालाल जी एवं श्री राजकुमार जी, कोषाध्यक्ष श्री बिजय लाल जी, उपमंत्री श्री नरेशचंद्र जी व श्री रमा कान्त जी एवं प्रबंध समिति के सभी माननीय सदस्यों के सौहार्दपूर्ण सहयोग के लिए हम आभारी हैं।

– अजित प्रसाद जैन
महामंत्री

TIRTHANKAR MAHAVIR SMRITI KENDRA SAMITI, U. P.

RECEIPTS AND PAYMENTS ACCOUNT FOR THE YEAR ENDING 31st MARCH, 2002

RECEIPTS		Rs. P.	PAYMENTS		Rs. P.
To Balance b/d :			**By Research Library :**		
F.D.R.S	1121913.00		Salary Libr. Asstt.	10700.00	
Savings Bank	73810.53		Salary Cleaner	960.00	
Cash in Hand	67.46	1195790.99	Contingencies	2043.00	
			Stationery & Prtg.	938.50	
TO Membership Fee		1061.00	Postage	476.35	
To Magazine Subscription		5540.00	Advance Rent	50000.00	
To Magazine Donation		712.00	Books	1124.00	
			Furniture & Equip.	22280.00	88521.85
To Research Library :			**BY Shodhadarsh Expenses:**		
Security Deposit	2200.00		Printing & Paper	23625.00	
Subscription	1240.00		Postage	3174.00	
Donation	7204.00		By M. J. K. Nidhi Exp.		4410.00
Grant from Educ. Deptt.	1750.00	12394.00	By T.C.S Kosh Scholarship		10112.50
			By Regn. Renewal Fee		340.00
To Miscellaneous Receipts		735.00	By Audit Fee		1050.00
To Interest on F.D.R.s		58064.43	By Bank Commission		30.00
To Savings Bank interest		1083.00	**By Balance c/d :**		
To F.D.R. Maturity Interest		388282.00	F.D.R.s	1510195.00	
			S. B. Account	15604.96	
			Cash in Hand	6599.11	1532399. 07
		1663662. 42			**1663662. 42**

A. P. jain
General Secretary
Tirthanker Mahavir Smriti Kendra Samiti, U. P.
Lucknow, August 8, 2002

Compiled from information and explanations furnished.

Alok Jindal
For A. Jindal & Co.
Chartered Accountants

समाचार विमर्श

– श्री अजित प्रसाद जैन

महासभा अधिवेशन–

दि. १८.८.०२ को उदयपुर में पू. आचार्य श्री वर्द्धमानसागर तथा पू. गणिनी आर्यिका श्री सुपार्श्वमती जी के ससंघ सान्निध्य में सम्पन्न वार्षिक अधिवेशन में श्री निर्मल कुमार जी सेठी को पुनः अध्यक्ष निर्वाचित किया गया तथा श्री सेठी जी ने श्री चैनरूप जी बाकलीवाल को महासभा का महामंत्री बनाया।

पू. आ. श्री वर्द्धमानसागर जी ने अपने उद्‌बोधन में श्रमण शिथिलाचार पर गहरी चिन्ता प्रकट करते हुए कहा कि आजकल आचार्य अपने शिष्यों पर समुचित नियंत्रण नहीं रखते जिससे एकल विहार को प्रश्रय मिला है और मुनियों में अनेक विसंगतियां आ गई हैं, उन्होंने आशा प्रकट की कि आचार्यगण अपने शिष्यों को नियंत्रण में रखने पर पूरा ध्यान देंगे। उन्होंने स्पष्ट किया कि समलिंगी दो साधु होने चाहिए वरना एकल विहारी ही कहलाएंगे।

महासभाध्यक्ष श्री सेठी जी ने घोषणा की कि फिलहाल एकल विहारी मुनिसंघों के समाचार जैन गजट में प्रकाशित नहीं किए जाएंगे। उन्होंने कहा कि हमारा उद्‌देश्य मुनि परम्परा को उज्ज्वल बनाए रखना है। महासभा के नवनियुक्त महामंत्री श्री चैनरूप जी बाकलीवाल ने सभी साधु संतों से श्रमण परिषद द्वारा सन् १९८१ में श्रवणबेलगोला में पारित किए गए प्रस्ताव का अनुपालन करने की विनम्र अपील की।

श्रमण समाचारी में प्रवेश करती जाती नित नई विसंगतियों के प्रति पू. आचार्य श्री वर्द्धमानसागर महाराज का चिन्तित होना उचित ही है, पर क्या केवल चिन्ता व्यक्त करने या साधु संतों से विनम्र कागजी अपील करने से शिथिलाचार पर कोई अंकुश लगना संभव है ?

२१ वर्ष पूर्व श्रवणबेलगोला में भगवान गोम्मटेश्वर के सहस्राब्दि महामस्तकाभिषकोत्सव के सुअवसर पर शताधिक पिच्छीधारियों की उपस्थिति में गठित मुनि परिषद ने शिथिलाचार की रोकथाम के लिए कुछ साधारण से नियम स्वीकृत किए थे पर आज तक उनका समग्र अनुपालन सुनिश्चित नहीं हो सका। दिगम्बर जैन समाज के विद्वज्जनों के संगठन विद्वत् परिषद तथा शास्त्रि परिषद भी यदा–कदा शिथिलाचार के विरुद्ध प्रस्ताव पास करते रहे हैं। शास्त्रि परिषद

ने तो अपने वर्ष १९९८ के अधिवेशन में शिथिलाचार के विरुद्ध अपनी जागरूकता प्रदर्शित करते हुए मुनि परम्परा की रक्षा हेतु एक २३ सूत्री नियमावली भी पारित कर दी थी तथा विभिन्न श्रमण संघो में जाकर उसका अनुपालन करने की अनुनय–विनय करने के लिए एक पांच सदस्यीय समिति भी गठित की थी। महासभा की गत वर्ष जुलाई २००१ में सम्पन्न बैठक में भी शिथिलाचार की रोकथाम के लिए मुनियों के एकल विहार, ख्याति–लाभ–पूजा की प्रवृत्ति, तीर्थ–मंदिर– मानस्तंभ आदि के निर्माण में संलिप्त रहने आदि के विरुद्ध कतिपय निर्णय लिए थे। किन्तु इन सब कागजी कार्यवाहियों से शिथिलाचार की कोई रोकथाम हो पाई ? उलटे उल्लेखनीय अभिवृद्धि ही दृष्टिगोचर हो रही है।

विडम्बना यह है कि हमारे आचार्यों/आर्यिका प्रमुखों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है तथा उनमें से अनेक इन्हीं सब प्रवृत्तियों में लिप्त हैं तो फिर उनके शिष्य भी उनसे भी बढ़–चढ़ कर क्यों न हों? श्रमण संघों में पनपते शिथिलाचार पर प्रभावी अंकुश लगाने के लिए आज आवश्यकता है एक सर्व या बहुमान्य नेता आचार्य की श्रमण समाचारी पर जिनका आदेश/निर्णय सर्वमान्य हो तथा जिसे सम्पूर्ण दिगम्बर जैन पूर्ण निष्ठा के साथ कार्यान्वित करावें। इस विषय पर कुछ विस्तार से चर्चा हम अपने किसी अगले सम्पादकीय में करेंगे।

लब्धि समारोह–

पूज्य **'तपस्वी सम्राट'** आचार्य सन्मतिसागर महाराज के आशीर्वाद के साथ उज्जैन से प्रकाशित 'आदित्य आदेश' (मासिक) के जुलाई–अगस्त २००२ के अंक में छपा निम्नलिखित सचित्र समाचार अवलोकनीय है–

''भगवान ऋषभदेव द्वारा निरूपित ७२ कलाओं में यंत्र–मंत्र–तंत्र कला का भी विवेचन हुआ जिसे दिगम्बर जैन आचार्यों ने अपनी लेखनी द्वारा **विद्यानुवाद** पूर्व के द्वारा महत्वपूर्ण स्थान दिया है तथा यह जिनवाणी का एक महत्वपूर्ण अंग है। उसी के अनुसार निज उपकार के साथ–साथ परोपकार की दृष्टि को अपने मन मानस पर अंकित करते हुए श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र चांदखेड़ी में योग योगीश्वर माहोपवासी आचार्य सन्मतिसागर म. के शिष्य खण्ड विद्या धुरन्धर बालाचार्य योगीन्द्र सागर महाराज ने दि. १४ जून, १९९७ को साधना द्वारा लब्धि (सिद्धि) प्राप्त की, जिससे आज वर्तमान में लाखों लोगों का उपकार हुआ, नवजीवन मिला। उस लब्धि समारोह को हर वर्ष की भांति इस वर्ष भी दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र पावागढ़ (गुजरात) में आ. सन्मतिसागर म. ससंघ, बालाचार्य श्री योगीन्द्रसागर म. ससंघ तथा पूज्य भट्टारक मुनिराज जयसागर महाराज के ससंघ सान्निध्य में मनाया गया।''

दिगम्बर जैन आम्नाय की मान्यतानुसार अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी के स्वर्गवास के उपरांत पूर्ण श्रुत के ज्ञाता कोई महामुनि नहीं रहे तथा बारह वर्ष के दुष्काल के परिणामस्वरूप तथा स्मृति की क्षीणता के कारण अल्प समय में ही पूर्ण श्रुत छिन्न–विच्छिन्न हो गया। तब श्रुत के एक देश ज्ञाता ज्योतिर्धर आचार्यों ने अपने को उपलब्ध श्रुतांश के आधार पर स्वयं या अपने योग्य शिष्यों को वाचना देकर स्वतंत्र ग्रंथों की रचना कर अवशिष्ट श्रुतज्ञान को संरक्षित किया। ऐसे एक देश श्रुतधारी महामुनियों की परम्परा भी वीर निर्वाण के ७००–८०० वर्ष तक ही चली। विद्यानुवाद का उल्लेख १४ पूर्वों में है, किन्तु श्रुत के किसी एक देश ज्ञाता मुनिराज ने इस पूर्व को या इसके किसी अवशिष्ट अंश को अपनी रचना से संरक्षित किया हो, ऐसा पढ़ने–देखने में नहीं आया। वर्तमान में कुछ वर्ष पूर्व २०वीं सदी में अवतरित हुए गणधराचार्य श्री कुंथुसागर जी महाराज द्वारा संकलित या रचित 'लघु विद्यानुवाद' नामक मंत्र शास्त्र का एक ग्रंथ (जयपुर से प्रकाशित) देखने में आया था किन्तु उस ग्रंथ में समाहित कतिपय मंत्र–यंत्र–विधि के प्रयोगों में कुछ अभक्ष्य एवं मांस पदार्थों के सम्मिलित होने के कारण उक्त ग्रंथ की विद्वत् वर्ग में तीखी आलोचना हुई थी तथा उसकी बिक्री आगे स्थगित कर दी गई थी। उसके बाद के वर्षों में तो अब हमारे कई मुनियों/आर्यिका माताओं व अन्य त्यागियों द्वारा कृत/संकलित मंत्र–तंत्र विद्या के कई ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। परवर्ती काल में यह विद्या श्रमण शिथिलाचार के भट्टारकीय युग में पल्लवित हुई तथा वर्तमान के महाव्रतियों त्यागियों में कदाचित् सर्वाधिक लोकप्रिय हो गई है और पूजा–ख्याति–लाभ अर्जित करने के लिए सर्वाधिक कारगर साधन सिद्ध हुई है।

उपर्युल्लिखित समाचार में कहा गया है कि भ. ऋषभदेव द्वारा निरूपित ७२ कलाओं में मंत्र–तंत्र–यंत्र कला का भी विवेचन हुआ है। हम नहीं समझ पा रहे हैं कि इस कथन से क्या सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। ७२ कलाओं में तो नृत्य, संगीत, द्यूत कलाएं भी थीं, तो क्या मोक्ष मार्ग के साधकों को उन कलाओं में भी प्रवीणता प्राप्त करनी चाहिए? भगवान ऋषभदेव ने उन ७२ कलाओं की बीज रूप में अपनी सन्तानों को गृहस्थावस्था में शिक्षा दी थी न कि मुनि अवस्था में केवलज्ञान प्राप्ति उपरांत अपने शिष्य मुनियों को।

समाचार में यह भी कहा गया है कि खण्ड विद्या धुरंधर बालाचार्य श्री ने मंत्र–यंत्र–तंत्र कला में प्रवीणता निज उपकार के साथ–साथ परोपकार की दृष्टि से की। हम यह नहीं समझ पा रहे हैं कि मोक्ष मार्ग में अपनी आध्यात्मिक यात्रा की प्रगति की दृष्टि से बालाचार्य श्री ने इस कला में प्रवीणता प्राप्त कर अपना क्या हित साधन किया? (यदि पूजा–ख्याति–लाभ को निज हित साधन न माना जाय तो)।

दिगम्बर जैन आम्नाय में तीर्थंकरों की कल्याणक तिथियों का ही महत्व था तथा उनमें भी विशेषकर उनके जन्म एवं मोक्ष कल्याणक की तिथियों का ही। व्यापक रूप से तो पहिले अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर का ही मोक्ष कल्याणक मनाया जाता था, अन्य तीर्थंकरों के जन्म/मोक्ष कल्याणक उनके जन्म या निर्वाण क्षेत्रों पर ही सामान्यतया मनाए जाते थे।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद ने ही सर्वप्रथम महावीर जयंती देशभर में व्यापक रूप से मनाए जाने की परम्परा डाली थी। आचार्यों, मुनियों की जन्म और समाधि तिथि मनाने का रिवाज तो बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही प्रारंभ हुआ। और अब तो हर मुनि, आर्यिका व अन्य त्यागी व्रती अपनी जन्म तिथि, दीक्षा दिवस बड़े भव्य रूप में मनाने लगे हैं जिनमें सैकड़ों–हजारों दर्शनार्थियों के लिए प्रीतिभोज का भी आयोजन रहता है। बाकायदा आर्ट पेपर पर सचित्र महंगे पोस्टर भी छपवाए जाते हैं। इससे भी एक कदम और बढ़कर अब लब्धि सिद्धि की वर्षगांठ भी मनाया जाना प्रारंभ हो गया है। हम सचमुच अब प्रगतिशील हो गए हैं।

जैसी आशंका थी भट्टारक श्री जयसेन मुनि जी ने भट्टारक दीक्षा ग्रहण करने के उपरांत भी मुनि पद के व्यामोह को नहीं छोड़ा है। वे परिग्रह–अपरिग्रह का विचित्र संगम प्रस्तुत करते हुए विचरण कर रहे हैं।

'आदित्य–आदेश' के इसी अंक में पृष्ठ २२–२३ पर संस्कृत में (हिंदी रूपान्तरण सहित) "भट्टारक पद स्थापना एवं दीक्षा विधि" भी दी गई है (रचयिता का नाम नहीं दिया गया है)। इसके अनुसार योग्य मुनि को ही भट्टारक पद दीक्षा देने का विधान किया गया है। जिससे यह ध्वनि निकलती है कि भट्टारक पद मुनि पद से श्रेष्ठ है। पत्रिका के तीसरे आवरण पृष्ठ पर पूर्व में हुए नग्न दिगम्बर भट्टारकों (श्री सकलकीर्ति, भुवन कीर्ति, ज्ञान भूषण तथा ज्ञानकीर्ति) की मूर्तियों के चित्र दिए गए हैं। इससे कदाचित् यह संदेश देने का प्रयास किया गया है कि भट्टारक श्री जयसेन जी के नग्न मुनि वेश में रहने में कोई नवीनता नहीं है, पहिले भी नग्न भट्टारक होते रहे हैं। इस विषय में हम केवल इतना ही कहना चाहेंगे कि भट्टारक सकलकीर्ति आदि का युग श्रमण शिथिलाचार की पराकाष्ठा का युग था तथा शुद्ध चारित्र का पालन करनेवाले दिगम्बर मुनिराज रहे ही नहीं थे, जो आज हैं। भट्टारक अपने को दिगम्बर मुनि से श्रेष्ठ समझें या निकृष्ट, उनके द्वारा दिगम्बर मुनि वेश धारण किए रहने से शुद्ध चारित्र वाले दिगम्बर मुनियों की छवि अवश्य कलंकित होती है।

———

साहित्य सत्कार

(१) जन जन के महावीरः सम्पादक– क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी महाराज (संघस्थ मुनि सुधासागर म.); प्र. श्री दि. जैन धर्म प्रभावना समिति, नसिया जी, दादावाड़ी, कोटा–राज.; प्राप्ति स्थान– श्री ऋषभदेव दि. जैन ग्रंथमाला, दि. जैन मंदिर, संघी जी, जयपुर; प्र. वर्ष– २००२; पृ.– ५२; मूल्य– कुछ नहीं।

भगवान महावीर स्वामी के २६००वें जन्म महोत्सव वर्ष में प्रकाशित इस लघुकाय पुस्तिका में जैन धर्म की प्राचीनता एवं भगवान महावीर तथा उनके शासन संघ के विषय में संक्षेप में अनेक जानकारियां सप्रमाण प्रस्तुत करने तथा गागर में सागर भरने का प्रयास किया गया है। क्षु. श्री ने कुण्डनगर (वैशाली) को भ. महावीर का जन्म स्थान बताया है। प्रयास स्तुत्य है जिसके लिए पू. क्षुल्लक जी बधाई के पात्र हैं। कृति का प्रकाशन भी नयनाभिराम है।

(२) नियति द्वात्रिंशिकाः आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकर विरचित, भाषा–संस्कृत, गुजराती अनुवाद–विवरण–मुनि श्री भुवनचन्द्र जी; प्र.–जैन साहित्य अकादमी, गांधीधाम, कच्छ; प्र. वर्ष–२००२; पृ.–२६; मूल्य– रु. २०/–

महान दार्शनिक एवं तार्किक चिन्तक,कवि, आचार्य सिद्धसेन दिवाकर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने अनेक बहुमूल्य कृतियों से श्वेताम्बर जैन वांङ्मय को समृद्ध किया है जिनमें से २१ रचनाएं आज भी उपलब्ध हैं। **नियति द्वात्रिंशिका** उनकी ऐसी ही एक बहुचर्चित कृति है। ३२ श्लोकों की इस लघु रचना में आजीवक सम्प्रदाय द्वारा प्रतिपादित नियतिवाद का सशक्त खंडन करते हुए भाग्य निर्माण आदि में पुरुषार्थ की भूमिका के महत्व को भी दर्शाया गया है।

(३) वर्धमान महावीर स्मृति ग्रंथः सं.– डॉ. सुदीप जैन; प्र.– जैन मित्र मंडल, २५१५, धर्मपुरा, दिल्ली–६; प्र. वर्ष– २००२; पृ.– ४६५; मूल्य– रु. २०१/–

भगवान महावीर के २६००वें जन्म कल्याणक वर्ष के सुअवसर पर पू. आचार्य श्री विद्यानंद मुनि जी के आशीर्वाद के साथ प्रकाशित इस स्मृति ग्रंथ को ४ खंडों में विभाजित किया गया है जिनमें भगवान महावीर के जीवन, उनके दर्शन, उनकी परम्परा तथा उनके उपदेशों की माध्यम–भाषा प्राकृत पर विभिन्न जैन व जैनेतर विद्वानों के आलेखों के माध्यम से सारगर्भित विवेचन प्रस्तुत किया गया है। विद्वान सम्पादक जी ने अपनी प्रस्तावना में भगवान महावीर का संक्षिप्त जीवन परिचय देते हुए 'वैशाली के कुण्डपुर' को ही उनकी जन्मस्थली निरूपित किया है तथा

अपने मत के समर्थन में डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, महापंडित राहुल सांकृत्यायन तथा महामहोपाध्याय पं. बलदेव उपाध्याय आदि जैनेतर विद्वानों के आलेख ग्रंथ के प्रथम खंड में दिए हैं।

''भगवान महावीर के उपदेशों की माध्यम भाषा प्राकृत'' को समर्पित ग्रंथ का चतुर्थ खंड इसकी विशेषता है जो अन्य किसी स्मृति ग्रंथ में देखने में नहीं आई।

ग्रंथ के सभी आलेख विद्वत्तापूर्ण एवं पठनीय हैं। ग्रंथ संग्रहणीय है।

(४) समग्र जैन चातुर्मास सूची–२००२ : सम्पादक– प्रकाशक– श्री बाबूलाल जैन 'उज्ज्वल', १०५ तिरुपति अपार्टमेन्ट्स आकुर्ली क्रास, रोड नं. १, रेलवे फाटक के पास, कांदिवली (पूर्व), मुम्बई– ४००१०१; पृ.– ३२४; मूल्य– रु. २०/–

श्री बाबूलाल जी 'उज्ज्वल' पिछले कुछ वर्षों से अपने मासिक पत्र 'गज सन्देश' के विशेषांक के रूप में जैन धर्म की विभिन्न आम्नायों/सम्प्रदायों के चातुर्मासरत आचार्यों/साधुओं/साध्वियों व अन्य पिच्छीधारियों की समग्र सूची, चातुर्मास स्थल, मुनि–आर्यिका आदि की संख्या, सम्पर्क सूत्र तथा प्रमुख आचार्यों, मुनियों, आर्यिकाओं की विशेष उपलब्धियों के, साहित्य निर्माण आदि के विवरण अत्यल्प मूल्य में उपलब्ध कराकर जैन समाज का महती उपकार कर रहे हैं। ग्रंथ के प्रारंभ में प्रत्येक सम्प्रदाय/गच्छ की सूची के अंत में रोचक तालिकाओं के रूप में महत्वपूर्ण विश्लेषण भी किए हैं।

प्रस्तुत सूची के अनुसार इस वर्ष दिगम्बर आम्नाय के ५५ आचार्य, ३ आचार्यकल्प, ४ ऐलाचार्य तथा एक बालाचार्य, १८ उपाध्याय, २८५ मुनिराज, ३५ ऐलक व ६६ क्षुल्लक कुल योग ५०० तथा १० गणिनी आर्यिका, ३२१ आर्यिकाएं, ६३ क्षुल्लिकाएं कुल ३६४ देश में २१५ स्थलों पर चातुर्मासरत रहे। इस प्रकार मुनियों/आर्यिकाओं की कुल संख्या ८६४ रही जबकि सन् १६८६ में कुल संख्या मात्र ३६६ थी। इनके अतिरिक्त कुछ और भी मुनि/आर्यिकाएं होंगी जिनके विषय में श्री उज्ज्वल जी को सूचना प्राप्त नहीं हो पाई। श्वे. स्थानकवासी सम्प्रदाय में १० आचार्य, ५५६ मुनिराज तथा २७७२ सतियां जी कुल ३३४१ ने ७८१ स्थलों पर चातुर्मास किया। श्वे. तेरापंथी सम्प्रदाय में १ आचार्य, १४६ साधु व ५४३ साध्वी कुल ६६० चातुर्मासरत थे। इनके अतिरिक्त श्वेताम्बर सम्प्रदाय (प्रगतिशील विचार समूह) (कुछ को छोड़कर अधिकांश वाहनविहारी) के ३ आचार्य, २० मुनिराज व २४ साध्वियों ने चातुर्मास किए। श्वे. मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के १५६ आचार्य, १५६७ मुनि तथा ५६५६ आर्यिकाओं– कुल ७७१२ ने १५४० स्थलों पर चातुर्मास किए। इस प्रकार समग्र जैन समाज के साधु/साध्वियों की कुल संख्या १२६८४ बताई गई

है। सन् २००० में यह संख्या १२,१०५ थी। समीक्ष्य सूची रोचक तत्वों से भरी है, संग्रहणीय है।

(५) जीवन्धर चम्पू सौरभः ले. श्रीमती डॉ. राका जैन, लखनऊ; प्र. जैन मिलन, २/६२, एम. विशाल खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ; प्र.वर्ष–२००२, पृ. २०३; मूल्य– रु. १००/–

समीक्ष्य कृति में विदुषी लेखिका के शोध–प्रबंध 'जीवंधर चम्पू–एक समीक्षात्मक अध्ययन, को प्रस्तुत किया गया है जिस पर उन्हें आगरा विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त हुई थी।

जीवन्धर चम्पू में संस्कृत भाषा के महाकवि हरिश्चन्द्र (११–१२वीं शती ई.) ने २३वें कामदेव जीवन्धर कुमार के प्रेरणास्पद चरित्र का रोचक चम्पू शैली (गद्य–पद्य मिश्रित भाषा) में वर्णन किया है। जीवन्धर कुमार ने अपने जीवन में ध र्म–अर्थ–काम– पुरुषार्थ का भरपूर उपभोग कर अंत में संसार से विरक्त हो भगवान महावीर स्वामी के समवशरण में मुनि दीक्षा लेकर परम संयम चारित्र अंगीकार किया तथा तप साधना कर मुक्ति लक्ष्मी को प्राप्त किया। जीवन्धर स्वामी का उदात्त चरित्र जैन धर्म में बहुत लोकप्रिय रहा है तथा उस पर संस्कृत–अपभ्रंश, हिन्दी–कन्नड़ तथा तमिल भाषाओं में एकाधिक काव्य ग्रंथों की रचना हुई है।

दो खण्डों और दस अध्यायों में विभक्त समीक्ष्य कृति में विदुषी लेखिका जी द्वारा ग्रन्थकार महाकवि हरिश्चन्द्र के व्यक्तित्व, कृतित्व का परिचय, ग्रंथ की कथा वस्तु, चरित्र–चित्रण संबंधी वैशिष्ट्य, रस योजना, काव्य शिल्प, इस काव्य ग्रंथ के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक मूल्यांकन आदि पर विद्वतापूर्ण विवेचन/ अध्ययन प्रस्तुत किया गया है जो साहित्य रसिकों के आल्हाद की वस्तु है। ग्रंथ संग्रहणीय है।

(६) श्रावकाचार सौरभः संपादक– डॉ. विजय कुमार जैन, लखनऊ; प्र. दि. जैन चातुर्मास समिति लखनऊ; प्राप्ति– श्री मुन्नेलाल कागजी जैन धर्मशाला, चारबाग, लखनऊ; प्र. वर्ष–२००२; पृ. १५५; मूल्य रु. ५०/–

समीक्ष्य कृति में पूज्य मुनि द्वय श्री सौरभसागर महाराज व श्री प्रबलसागर महाराज की प्रेरणा एवं सानिध्य में उनके चातुर्मास स्थल श्री मुन्नेलाल कागजी जैन धर्मशाला लखनऊ के प्रांगण में दि. १५–१६ अगस्त, २००२ को सम्पन्न श्रावकाचार संगोष्ठी में विभिन्न स्थानों से पधारे २५ विद्वानों द्वारा दि. जैन श्रावकाचार के विभिन्न पहलुओं पर पढ़े गए सारभूत आलेखों का संकलन प्रस्तुत किया गया है। डॉ. विजय कुमार जैन, अध्यक्ष, बौद्ध दर्शन विभाग, राष्ट्रीय

संस्कृत संस्थान, लखनऊ द्वारा संगोष्ठी का विद्वत्तापूर्ण संयोजन किया गया। संकलन में इस संगोष्ठी पर हमारा भी एक समीक्षात्मक आलेख **शोधादर्श** ४७ से उद्धृत कर प्रकाशित किया गया है। दि. जैन श्रावकाचार के विषय में समुचित जानकारी प्राप्त करने के लिए यह संकलन उपयोगी है तथा संग्रहणीय है।

(७) अप्पाणं शरणं: ले. डॉ. बी. रमेश, Jaina Yoga Sadhana Kendra, 13 Sharada Building, 3rd Main, Srirampuram-560021; प्र. वर्ष–२००१; पृ. १२८; मूल्य– रु. १००/–

समीक्ष्य कृति में आत्मसाक्षात्कार का पथ–जैन अयोग साधना का विवेचन किया गया है। जैन धर्म में निश्चय नय की अपेक्षा से अप्पाणं शरणम् अर्थात् जीव स्वयं ही अपनी शरण है। अपने आप की शरण में जाने का मार्ग ही आत्मसाक्षात्कार का पथ है जो अयोग साधना द्वारा ही संभव है और अयोग साधना जीव तभी कर पायेगा जब वह शारीरिक निरोगता, मानसिक शांति एवं आध्यात्मिक निजात्म स्वरूप आनंद को प्राप्त करेगा। प्रस्तुत कृति में इसी तथ्य को ध्यान में रखकर जैन योग साधना पद्धति के सैद्धांतिक पक्ष को प्रयोगात्मक रुचि की विधि से प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक बहुत उपयोगी है संग्रहणीय है।

जैन योग साधना केन्द्र किसी भी सामाजिक या धार्मिक संघ/संस्था के अनुरोध पर बंगलौर के बाहर भी एक या तीन दिवसीय शरीर सह आत्मोपचार शिविर निःशुल्क लगाते हैं।

(८) ओं– श्रीमद्राजचन्द्र निर्वाण शताब्दी स्मारिका: प्र. श्री सहज श्रुत परभ, श्री सुधाबेन शेठ, १११, सिलवर शाइन, पंचायत चौक, युनिवर्सिटी रोड, राजकोट–३६०००५; भाषा–गुजराती; प्र. वर्ष–२००२; पृ. २१२; मूल्य अमूल्य स्वाध्याय।

आध्यात्मिक गृहस्थ संत श्रीमद्राजचन्द्र जी की स्वर्गारोहण शताब्दी के उपलक्ष्य में इस स्मारिका का प्रकाशन किया गया है। उत्तम आर्ट पेपर पर मुद्रित तथा सुन्दर जिल्द से वेष्टित इस स्मरणिका में श्रीमद्राजचन्द्र जी के आध्यात्मिक पत्रों आदि का संकलन प्रस्तुत किया गया है। गुजराती भाषा के जानकार अध्यात्म रसिकों के लिए यह ग्रंथ बहुत उपयोगी और संग्रहणीय है।

– अजित प्रसाद जैन

(९) द्रोणगिरि–दर्शन : लेखक एवं सम्पादक– श्री सुरेन्द्र कुमार जैन; प्र. डॉ. महेन्द्र कुमार जैन अध्ययन केन्द्र, भगवां, जिला छतरपुर (म.प्र.)–४७१३११; प्रथमावृत्ति २००२ ई.; पृष्ठ ७०+६; सजिल्द।

मध्यप्रदेश के छतरपुर जिले में सेंधपा गांव के निकट सदातोया श्यामरी और काठन युगल सरिताओं के मध्य अर्द्धचन्द्राकार रमणीक सघन वृक्षावलि से आवेष्टित सुरम्य पहाड़ी द्रोणगिरि नाम से अभिहित है। प्राकृत **णिव्वाण काण्ड** और हिन्दी **निर्वाण काण्ड** में फलहोड़ी बड़ग्राम के पश्चिम में स्थित द्रोणगिरि शिखर से गुरुदत्त आदि मुनीश्वरों के मुक्ति पाने का उल्लेख है। हरिषेण कृत **वृहत्कथा कोष** और **आराधनासार** से विदित होता है कि हस्तिनापुर नरेश गुरुदत्त मुनि अवस्था में अपने वैरी द्वारा अग्निकृत उपसर्ग के कारण मोक्ष को प्राप्त हुए थे। गुणकीर्ति (१५वीं शती) ने अपने **धर्मामृत** (मराठी) में फलहोड़ी ग्राम से साढ़े तीन करोड़ मुनियों की मुक्ति होने का उल्लेख किया है। अनेक मुनियों का मुक्तिधाम होने से द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र माना जाता है। इस गिरि पर ३२ भव्य शिखरयुक्त जिनालय, ५ चरण चिन्ह स्थली, विशाल गुफा आदि हैं जिनके कारण यह बुन्देलखण्ड का लघु सम्मेदशिखर माना जाता है।

राष्ट्रपति से सम्मानित शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, बड़ामलहरा में व्याख्याता सुरेन्द्र कुमार जी ने इस सिद्धक्षेत्र का परिचय प्रस्तुत पुस्तक का संयोजन तीन खण्डों में करके दिया है। प्रथम खण्ड में मनीषी विद्वानों द्वारा इसके इतिहास और पुरातत्व के सम्बंध में लिखे गये लेख संकलित हैं और क्षेत्र दर्शन कराया गया है। द्वितीय खंड में इस सिद्धक्षेत्र पर प्रतिष्ठित ११५ मूर्तियों के प्रशस्ति लेख और उन प्रतिमाओं का परिचय दिया गया है। तृतीय खण्ड में सिद्धक्षेत्र का पूजन एवं विधान आदि संकलित है। यह पुस्तक द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र पर उपकार है और श्रद्धालु तीर्थयात्रियों, पुराविदों एवं इतिहास अध्येताओं के लिये यह उपयोगी, यह निस्सन्देह है।

(१०) जैन युंग पुरुष : स्व. बाबू श्री सुकुमार चंद जैन : संयोजक श्री प्रवीण कुमार जैन; सम्पादक श्री नवनीत कुमार जैन; प्र. श्री प्रबंधकारिणी कमेटी, जैन बिरादरी, मेरठ शहर; प्रकाशन २–६–२००२; पृ. ६६; सचित्र।

१६ नवम्बर, २००१ को दिवंगत 'मेरठ रत्न', हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र के विकासकर्ता, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के आजीवन सदस्य, धर्मप्राण, देश विख्यात समाजसेवी 'जैन युग पुरुष' बाबू सुकुमार चंद जैन को उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के अनुरूप साधु–साध्वी, विद्वद्वर्ग, समाज के सदस्यों और परिवारजनों द्वारा अर्पित श्रद्धा–सुमनों का यह गुलदस्ता बड़ी सुरुचि से संजोया गया है जिसके लिये संयोजक और सम्पादक बधाई के पात्र हैं।

(११) माँ : संकलनकर्ता एवं प्रकाशक– जैन प्रकाशन, ३१ गुलजार चौक, पाली–मारवाड़ (राज.)–३०६४०१; सचित्र; आवरण सहित ३६ पृष्ठ; मूल्य रु. ५/–

भगवान को किसने देखा है, कहना कठिन है। जन्मदात्री ममतामयी माँ की गोद तथा पालनहार पिता के प्यार का उपभोग और आनन्द तो हम़में से अधिकांश ने उठाया है। जिन माँ–बाप के कारण हम इस संसार में आये और जिन्होंने पालपोस कर हमें बड़ा किया और किसी लायक बनाया उनके ऋण से हम कैसे उऋण हो सकते हैं? किन्तु आज सन्तान प्रायःकर अपने वृद्ध माता–पिता की कैसी उपेक्षा कर रही है, चतुर्दिक् घट रही ऐसी घटनाओं से उद्विग्न होकर विवेच्य कृति का सृजन हुआ है। माँ को महिमामण्डित करने वाली पद्य में निबद्ध और विदेशी चित्रों से सज्जित यह लघुकाय कृति सभी के लिये पठनीय और मननीय है। यदि मुद्रण की कृपा अथवा अन्यथा प्रकाशन में दृष्टिगत हो रहे भाषायी दोषों का परिहार हो जाता और भारतीय भावभूमि में रचित इस कृति में चित्र भी भारतीय परिवेश से संजोये गये होते तो इसकी भव्यता में चार चाँद लग जाते।

(१२) कवि एक रस अनेक : प्रणेता छन्दराज पारदर्शी; प्र. कुलदीप प्रकाशन, २६१/४, उत्तरी आयड़, उदयपुर–३१३००१; प्रथमावृत्ति १९९६ ई:; पृ. ११२; मूल्य रु. ५०/–

समर्थ रचनाकार पारदर्शी की लेखनी से प्रसूत ८४ कवित्त, १६० दोहे, ९६ पुष्प, २४ कुण्डलियाँ और २४ सवैये का यह संकलन विविध रसों को समाहित किये हुये कहीं पाठकों को गुदगुदाता है, कहीं वर्तमान सामाजिक विसंगतियों पर सशक्त चोट करके कुछ सोचने को बाध्य करता है और कहीं उनके मन में उदात्त भावों को प्रस्फुटित करता है।

"सरस्वती देवालय! दरबार नहीं है।
काव्य–पाठ पूजा है, व्यापार नहीं है।।"

में विश्वास करने वाले पारदर्शी मंदिर में भी भेदभाव का दर्शन पा कह उठे–

"राम धाम में नाम से, दर्शन पाते लोग।
पारदर्शी मंदिर को, लगा छूत का रोग।।"

काव्यरसिकों को इस कृति द्वारा अमन्द आनन्द की अनुभूति कराने वाले पारदर्शी जी के लिये अपनी यही शुभेच्छा है–

पारदर्शी छन्दों में गाते चलो, भावों की गंगा बहाते चलो।
विसंगतियां जो खटकें आँखों में, उनपै तीर अपने चलाते चलो।।"

(१३) जैन सन्तों में बढ़ता शिथिलाचार–आवश्यक क्रियोद्धार : प्रणेता ऊँ पारदर्शी; मुद्रण– पारदर्शी प्रिन्टर्स, आयड़, उदयपुर; पृ. १६; मूल्य रु. २/–

तपागच्छीय जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक श्रीसंघ में हुए श्री राजेन्द्रसूरीश्वर म. सा. के अनन्य भक्त उपर्युक्त छन्दराज पारदर्शी ने उन्हीं का अनुकरण कर जैन

संतों में वर्तमान में दृष्टिगत शिथिलाचार से क्षुब्ध होकर उस पर चोट करते हुए क्रियोद्धार हेतु प्रस्तुत लघुकाय कृति का सृजन किया है। कवि– मन की व्यथा निम्नांकित कुण्डलिया में दृष्टव्य है–

"न्यारे–न्यारे पन्थ हैं, न्यारे–न्यारे संत।
टुकड़े–टुकड़े हो गए, महावीर भगवन्त।।
महावीर भगवन्त, नाम का ओढ़ दुशाला।
दो नम्बर का माल, प्रदर्शन करते आला।।,
हमें "पारदर्शी" लड़वाते सन्त हमारे।
मूल–धर्म को भूल, बांटते लेबल न्यारे।।"

(१४) गल्प–गंगा (कथा–संग्रह) : कथाकार डॉ. परमानन्द जड़िया; प्र. मधुलिका प्रकाशन, १८६/५१, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ–२२६०१८; प्रथमावृत्ति अगस्त २००२; पृ. १४८; मूल्य रु. १००/–

'आस्था के चरण', 'साकांक्षा' तथा 'साधना के सोपान' के उपरान्त कथाकार डॉ. जड़िया की लेखनी से प्रसूत–प्रकाशित यह चतुर्थ कथा–संग्रह है। इसमें उनकी पूर्व प्रकाशित–अप्रकाशित २१ कहानियां संकलित हैं। इस 'गल्प–गंगा' के इन २१ घाटों पर अवगाहन करते हुए मन ऐसा रमा कि रमता ही रहा, समय का भान न रहा।

जहाँ 'बलिदान' और 'आरक्षण' आज बेरोजगारी से जूझते सवर्ण मध्यम वर्ग की भ्रष्टाचार और आरक्षण के नाम पर बलिदान की मर्मान्तक कहानियां हैं, 'अन्त एक कली का' मामी के संवेदनाहीन व्यवहार का परिणाम है। 'भीड़–तंत्र' में आज भीड़ भरी सड़कों पर कभी भी किसी के भी गुम हो जाने का चित्रण है। 'वे वस्तुतः आत्माराम थे', 'ठाकुर मल्ल', 'मानवता का पलायन', 'तपस्या का बल' और 'परवरिश' में परोपकार परायण, सरल स्वभावी, विमल चरित्रवाले मनुजों का चित्रांकन है। 'गुरु–कृपा', 'विषपान', 'स्वप्न' और 'जाने पहचाने' में पात्रों के उदात्त भावों के साथ–साथ कथाकार के रसिक युवा मन का भी दर्शन होता है। उन्होंने पाठकों को लखनऊ विश्वविद्यालय में सहपठन और बम्बई व दिल्ली की सैर भी करा दी। 'जाने पहचाने' में दहेज दूषण पर सार्थक समाधान भी प्रस्तुत हुआ है। समग्रतः सहज–सरलशैली में प्रसूत यह संकलन सभी कथा–रसिकों को रससिक्त करने वाला है जिसके लिये कथाकार जड़िया जी साधुवादार्ह हैं।

(१५) दोहा–दर्पण : रचनाकार डॉ. परमानन्द जड़िया; प्र. मधुलिका प्रकाशन, १८६/१, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ– २२६०१८; प्रथमावृत्ति जून २००२; पृ. ८८; मूल्य रु. ७५/–

शारदा–स्तवन से प्रारंभ हुआ सात सौ से अधिक दोहों का प्रस्तुत संकलन सरस्वती का वरद हस्त प्राप्त डाक्टर जड़िया की लेखनी से प्रसूत है और उनका इक्तालिसवां प्रकाशित ग्रन्थ है। विविध विषयों को स्पर्श करने वाली इस 'दोहा सप्तशती' में कवि ने विभिन्न सामाजिक समस्याओं को भी रेखांकित किया है और प्रसंगानुकूल अपने मनोभावों को अभिव्यक्ति दी है। इन दोहों के माध्यम से उन्होंने वर्तमान विसंगतियों पर भी सशक्त चोट की है, यथा–

'आंखों का है मर गया, 'जड़िया इतना नीर।
पत्रों में छपवा रहे, हम नंगी तस्वीर।।"

और व्यंग किया है,

"कैसे मंत्री त्याग दें, सुविधा, बंगला, कार।
निर्धन भारत का इन्हें, करना है उद्धार।।"

अपने श्रद्धेय नेताओं और कतिपय परिचित दिवंगत साहित्यकारों को भी कृतिकार ने इस दोहावली में श्रद्धा–सुमन अर्पित किये हैं।

बिहारी सतसई, बुधजन सतसई, मतिराम सतसई, विक्रम सतसई, वीर सतसई, वृन्द सतसई, श्रंगार सतसई की परम्परा में रचित यह 'सप्तशती' सतसई साहित्य में स्मरणीय स्थान प्राप्त करेगी।

(१६) स्मृति शेष नमन : स्व. मास्टर राजधर जी जैन; प्रधान सम्पादक डॉ. भांगचंद्र जैन 'भागेन्दु'; प्र. मास्टर राजधर जैन स्मारिका प्रकाशन समिति; प्राप्ति स्थल श्री राजकुमार जैन, ५६८, स्टेट बैंक कालोनी, स्नेहनगर, जबलपुर (म.प्र.); प्रकाशन अगस्त २००२; पृ. १३२

११ नवम्बर, १६२२ ई. को ललितपुर में जन्मे और १२ अगस्त, १६६६ ई. को इटारसी में दिवंगत, संस्कृत प्रधानाध्यापक, सर्वोदयी विचारक और सर्वधर्म समभाव के सफल प्रस्तोता मास्टर राजधर जैन की प्रेरक जीवनयात्रा को रेखांकित करने वाली यह स्मारिका छह खण्डों में संयोजित है। प्रथम खण्ड में जहाँ विशिष्टजन के शुभकामना संदेश और राजधर जी की वंशावली संकलित है, द्वितीय में उनकी जीवनी और परिचय दिया गया है। तृतीय खण्ड में २५ काव्यांजलियां और चतुर्थ में चित्रावलि संयोजित है। पंचम में उनके कर्मठ व्यक्तित्व और रचना–धर्मिता के सम्बंध में उनसे सम्बंधित ३० संस्मरण संजोये गये हैं। एक प्रेरणास्पद व्यक्तित्व को उजागर करने वाली यह स्मारिका दिवंगत के प्रति तो उनकी गरिमा के अनुरूप श्रद्धांजलि है ही, पाठकों को भी प्रेरणाप्रद है।

– रमा कान्त जैन

समाचार विविधा

आचार्य श्री आनंद ऋषि महाराज पर डाक टिकट और सिक्के–

अहमदनगर (महाराष्ट्र) में ६ अगस्त, २००२ को राष्ट्रसन्त आचार्यश्री आनन्दऋषि के १०३वें जन्मदिवस पर आयोजित कार्यक्रम में केन्द्रीय संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी व संसदीय कार्यमंत्री श्री प्रमोद महाजन ने आचार्य श्री आनन्दऋषि पर डाक टिकट का विमोचन किया। साथ ही भारी उद्योगमंत्री श्री बालासाहेब बिरवे ने पांच रुपये के सिक्के का वितरण किया।

अ.भा. श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक युवक महासंघ का तृतीय वार्षिक अधिवेशन–

सादड़ी, जिला पाली (राजस्थान) में ५ व ६ अक्टूबर को आचार्य श्री पद्मसागर सूरीश्वर की निश्रा और पू. मुनि श्री नयपद्मसागर के मार्गदर्शन में अ. भा. श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक युवक महासंघ का दो दिवसीय वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ।

श्रावकाचार संगोष्ठी एवं पं. रतनचंद मुख्तार जन्म शताब्दी–

सहारनपुर (उ.प्र.) में वहीं १६०२ ई. में जन्में लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान, शंका समाधानकर्ता और 'नियतिवाद', 'अकालमरण' जैसी बहुचर्चित कृतियों के रचयिता स्व. पं. रतनचंद मुख्तार के एक वर्ष पर्यन्त चलने वाले जन्म शताब्दी समारोह की श्रृंखला में ६ और ७ अक्टूबर को एक दो दिवसीय श्रावकाचार संगोष्ठी आयोजित हुई जिसमें अनेक विद्वानों ने श्रावकाचार के विभिन्न पक्षों पर अपने विचार प्रस्तुत किये। प्रथम सत्र के अध्यक्ष डॉ. सुरेशचंद जैन (दिल्ली) और द्वितीय के डॉ. फूलचंद 'प्रेमी' (वाराणसी) थे। तदनंतर दिनांक ८ अक्टूबर को पंडित जी के उक्त जन्म शताब्दी समोह का शुभारंभ डॉ. श्रेयांस कुमार जैन के संचालन में हुआ।

करुणा अन्तर्राष्ट्रीय का अखिल भारतीय अधिवेशन–

६–१० जनवरी, २००३ को पुरुषवाक्कम् स्थित सी. यू. शाह भवन (रिथर्डन रोड), चेन्नई में करूणा अन्तर्राष्ट्रीय, चेन्नई का यह अधिवेशन आयोजित है।

जैन वधू–वर सम्मेलन–

१६ जनवरी, २००३ को श्री दिग. जैन सैतवाल सेवामण्डल, सोलापुर (महाराष्ट्र) द्वारा हिराचन्द नेमचन्द दिगम्बर जैन कार्यालय धर्मशाला तथा पी. एस. इंग्लिश मीडियम हाईस्कूल, श्राविकाश्रम, सम्राट चौक, सोलापुर में १५ वा राज्यस्तरीय जैन वधू–वर सम्मेलन आयोजित है।

अभिनंदन

श्रीमती निर्मला गोदीका को उनके शोध–प्रबंध **'पर्यावरण संतुलन : जैन धर्म व संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में'** तथा **सुश्री अल्पना परमार** को उनके शोध–प्रबंध **'आचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज के साहित्य में प्रतिबिम्बित भारतीय संस्कृति'** पर राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर ने पी–एच.डी. उपाधि प्रदान की।

■ यूनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन ने राष्ट्रपति सहस्राब्दि पुरस्कार से सम्मानित प्रो. **डॉ. राजा राम जैन,** मानद निदेशक, कुन्द कुन्द भारती, नई दिल्ली को अपनी अति महत्वपूर्ण विजिटिंग कमेटी का सदस्य मनोनीत किया है।

■स्वतंत्रता दिवस १५ अगस्त, २००२ पर 'प्राकृत विद्या' के सम्पादक **डॉ. सुदीप जैन** को **वर्ष २००२ का प्राकृत भाषा विषयक राष्ट्रपति सम्मान (युवा)** प्रदान किये जाने तथा 'जैन जर्नल' (अंग्रेजी) व 'श्रमण' (बंगला मासिक) के सम्पादक भू.पू. प्रोफेसर कलकत्ता विश्वविद्यालय **डॉ. सत्यरंजन बनर्जी** को प्राकृत एवं जैन दर्शन के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान हेतु **राष्ट्रपति पुरस्कार** (सम्मान राशि रु. एक लाख) से सम्मानित किये जाने की घोषणा की गई।

■ **श्री रूपचंद जैन,** वरिष्ठ दूरसंचार प्रचालक (तार) जयपुर, को स्वतंत्रता दिवस पर **'भारत संचार सारथी वर्ष २००२ पुरस्कार'** से सम्मानित किया गया।

■ २५ अगस्त को कोलकाता में विचार मंच द्वारा कला के प्रति समर्पित **सुश्री प्रीति बेंगानी** को **'ब्राह्मी कला सम्मान'** प्रदान किया गया।

■ शिक्षक दिवस पर **श्रीमती पदमा जैन,** संस्कृत व्याख्याता, राजकीय बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय, जोधपुर को सम्मानित किया गया।

■ लखनऊ में राज्यपाल डॉ. विष्णुकांत शास्त्री द्वारा १३ सितम्बर को तीन अन्य पुस्तकों के साथ आई. टी. कालेज, लखनऊ में हिन्दी प्राध्यापिका **डॉ.मधु जैन** के शोधग्रन्थ **'कविवर नन्दराम : व्यक्ति एवं रचनाकार'** का तथा २२ अक्टूबर को **डॉ. विजय कुमार जैन** द्वारा सम्पादित **'श्रावकाचार सौरभ'** और **डॉ. राका जैन** द्वारा लिखित **'जीवन्धरचंपू सौरभ'** पुस्तकों का विमोचन किया गया।

२० अक्तूबर को इलाहाबाद में **पं. धनराज जैन,** अमीन नगर सराय को **वर्ष २००१ का जम्बूद्वीप पुरस्कार** तथा **डॉ. शेखरचन्द्र जैन,** अहमदाबाद, को **वर्ष २००२ का जम्बूद्वीप पुरस्कार** प्रदान किया गया।

पं. सागरमल जैन, विदिशा को **आचार्य शांतिसागर छाणी की स्मृति में, पं. लालचन्द्र जैन 'राकेश', गंजबासौदा** को **आचार्य सूर्यसागर की स्मृति में,**

श्री पारसदास जैन, दिल्ली को **आचार्य विमलसागर (भिण्ड) की स्मृति में, डॉ. कमलेश कुमार जैन, वाराणसी** को **आचार्य सुमतिसागर की स्मृति में** और **श्रीमती माधुरी जैन, जयपुर** को **मुनि वर्द्धमानसागर की स्मृति में** स्थापित **वर्ष २००२ के श्रुत संवर्द्धन पुरस्कारों** तथा **श्री विनय कुमार जैन, दिल्ली** को **सराक पुरस्कार, २००२** प्रदान किये जाने की घोषणा की गई।

तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के वर्ष २००२ के **चन्दारानी जैन स्मृति पुरस्कार** हेतु **पं. लालचन्द्र जैन 'राकेश', गंजबासौदा** का तथा **रूपाबाई जैन पुरस्कार** हेतु **श्री रमेश कासलीवाल, सम्पादक–वीर निकलंक, इन्दौर** का चयन किया गया।

डॉ. अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर को उनकी कृति **'जैन स्तूप परम्परा'** पर **ज्ञानोदय पुरस्कार–२०००** देने की घोषणा की गई।

श्री मिलाप चंद डांडिया, जयपुर को उनकी पुस्तक 'मुखौटों के पीछे' के लिये **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुस्कार** से सम्मानित किया गया।

उपर्युक्त सभी सम्मानित महानुभावों का उनकी उपलब्धियों के लिये **शोधादर्श** परिवार अभिनंदन करता है और उन्हें अपनी शुभकामना अर्पित करता है।

———

आभार

■ **जस्टिस एम. एल. जैन,** २१५, मन्दाकिनी एनक्लेव, अलकनन्दा, नई दिल्ली ने **शोधादर्श** हेतु पुनः १,१००/– भेंट किये।

■ **श्री अजित प्रसाद जैन,** पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ ने (१) अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री सूर्यकांत जैन के २१ अगस्त, २००२ को निधन पर उसकी पुण्य स्मृति में **शोधादर्श हेतु** रु. १०१/– तथा (२) अपने पिताश्री स्व. बा. पारसदास जैन की ४६वीं पुण्यतिथि पर उनकी स्मृति में रु. ५१/– व (३) अपने कनिष्ठ पुत्र श्री मणिकांत की द्वितीय पुण्यतिथि पर उसकी स्मृति में रु. ५१/– **समिति के शोध पुस्तकालय** को भेंट किये।

■ **श्री राकेश जैन,** खतौली ने अपने पिताश्री स्व. श्री विमल प्रसाद जैन बजाज की पुण्य स्मृति में डॉ. कपूर चन्द जैन, खतौली के माध्यम से **शोधादर्श** हेतु रु. २५०/– भेंट किये।

शोक संवेदन

■ २० सितम्बर, २००२ को अपोलो अस्पताल, नई दिल्ली में देश के सुप्रसिद्ध पत्र 'दैनिक जागरण' के मालिक एवं प्रधान सम्पादक व सांसद ६८ वर्षीय श्री **नरेन्द्र मोहन** का निधन हो गया।

■ ३ अक्टूबर को मण्डला (म.प्र.) में धर्मपारायण, सरल स्वभावी, मण्डला में योजना अधिकारी (शिक्षा) **डॉ. महेन्द्र कुमार जैन** का अचानक हृदयाघात से निधन हो गया।

■ ५ अक्टूबर को प्रतिष्ठाचार्य **पं. मोतीलाल मार्तण्ड** नहीं रहे।

■ ८ अक्टूबर को कानपुर में तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के आजीवन सदस्य श्री इन्द्रजीत जैन की धर्मपरायणा पत्नी **श्रीमती शैल कुमारी जैन** का पंडित मरण हो गया।

■ ८ नवम्बर को वाराणसी में लब्धप्रतिष्ठ वयोवृद्ध जैन विद्वान **पं. अमृतलाल जैन शास्त्री** दिवंगत हो गये।

■ ११ नवम्बर को लखनऊ (चौक) में तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र. की प्रबंध समिति के सदस्य, समाजसेवी, धर्मपरायण ५५ वर्षीय **श्री सुरेन्द्रनाथ जैन** का रात्रि में अकस्मात हृदयाघात से अकाल निधन हो गया।

■ १४ नवम्बर को लखनऊ में स्वतंत्रता संग्राम सेनानी एवं 'स्वतन्त्र भारत' व अन्य विभिन्न पत्रों के सम्पादक रहे ८४ वर्षीय **श्री चन्द्रोदय दीक्षित** का देहावसान हो गया।

■ २१ नवम्बर को बड़ौत में सुश्रावक **श्री श्रीपाल जैन** नहीं रहे।

■ २३ नवम्बर को खतौली में ८४ वर्षीय धर्मनिष्ठ श्रावक **श्री विमल प्रसाद जैन बजाज** का स्वर्गवास हो गया।

■ २५ नवम्बर को लखनऊ में सरल स्वभावी ६८ वर्षीय **श्री ललित मोहन अग्रवाल** का निधन हो गया।

■ २७ नवम्बर को उज्जैन में हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान ८६ वर्षीय **पद्मभूषण डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन'** दिवंगत हो गये।

■ २८ नवम्बर को बाराबंकी में पूज्य मुनि **श्री स्वयम्भू सागर महाराज** का समाधिमरण हो गया।

उपर्युल्लिखित सभी दिवंगत महानुभावों के प्रति **शोधादर्श परिवार** अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की चिर शांति और सद्गति के लिये जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करता है और शोक संतप्त उनके स्वजनों–परिजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

शोधादर्श : पाठकों की दृष्टि में

■ **शोधादर्श** न केवल शोध पत्रिका है वरन् डाइजेस्ट पत्रिका भी है। अब तो इसका साहित्यिक स्वरूप भी विकसित हो रहा है। आशा है इससे इसका शोधपरक पक्ष प्रभावित नहीं होगा।

अंक ४६ में "The Archaeology of Faith-Lord Rishabhadeo' के अंतर्गत श्री अजित प्रसाद जी का स्पष्टीकरण ठीक है। एक बात अवश्य है कि वर्तमान अयोध्या घाघरा नदी के तट पर स्थित है। जनमानस उसी को सरयू कहता है। वस्तुतः वर्तमान में सरयू एक छोटी नदी है जिसका घाघरा से संगम रौनाही (रत्नपुरी) से कुछ पहले हो जाता है।

जहां तक 'समाचार विमर्श' के अंतर्गत शास्त्रि. परिषद के भगवान महावीर की जन्म भूमि कुण्डलपुर विषयक प्रस्ताव का सम्बन्ध है, लगता है अब इस प्रकार के निर्णय शोध–खोज, विचार–विमर्श के आधार पर न होकर हाथ उठाकर हो रहे हैं। भगवान महावीर की जन्मभूमि के संदर्भ में विदेह का नाम आया है।

शोधादर्श ४७ में डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का 'पारनगर का जैन पुरातत्व' लेख आज भी महत्वपूर्ण है। उसमें वर्णित 'नीलकण्ठ महोदव' क्षेत्र अभी भी सरिस्का वन्य जीव अभयारण्य क्षेत्र में है। आज भी विशाल खड्गासन प्रतिमा वहां असुरक्षित पड़ी हुई है। इसका विवरण 'इण्डिया टुडे' में प्रकाशित हो चुका है। जैन पुरातत्व के संरक्षण में अक्षम होते हुये भी हम नित नये तीर्थों का निर्माण करते जा रहे हैं। इस संदर्भ में आपका सम्पादकीय बहुत सटीक है। डॉ. शशिकान्त जी का जैन मूर्तियों पर लेख विशिष्टतापूर्ण है। उन मूर्तियों की व्याख्या की आवश्यकता है। श्री अजित प्रसाद जी की मांसाहार प्रकरण पर बहुत सही मीमांसा है। श्री रमाकान्त जी की सुन्दर काव्य रचनायें बहुत सामयिक हैं।

– आदित्य जैन, लखनऊ

■ इस पत्रिका का सम्पादन और शैली सबसे निराली है। सामाजिक गतिविधि के दिग्दर्शक वर्तमान समाचारों को पूर्णरूपेण प्रकाशित करते हुए उन पर अपने दीर्घकालीन अनुभव से पत्रिका में उनका विश्लेषण करते हुए उचित मार्गदर्शन प्रदान करते रहना इसकी विशेषता है।

शोधादर्श के नामानुरूप पठनीय सामग्री इस पत्रिका में रहती है जो संग्रहणीय है। स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जी जैन इतिहास के विशिष्ट ज्ञाता थे। पत्रिका में 'पारनगर का जैन पुरातत्व' (जैन संदेश का ३६ वर्ष पूर्व का लेख) पढ़कर उनकी स्मृति आ गई।

– नाथूलाल जैन शास्त्री, इंदौर

■ **शोधादर्श**–४७ प्रथम आलेख से ही मोह रहा है। पंडित टोडरमल जी के बारे में दी गई अछूती जानकारियां इसमें पढ़ने को मिली। संपादकीय में उठाया वास्तुशिल्प का प्रश्न विचारणीय है। प्राण प्रतिष्ठा जो उस काल में हुई और जिससे श्रद्धालुओं की श्रद्धा जुड़ गई उसमें किसी प्रकार की विघ्न बाधा रहे ऐसा लगता तो नहीं है। फिर वास्तु विशेषज्ञ यह भी बतलाते हैं कि कोई निर्माण तोड़ने के स्थान पर मामूली सी जोड़–तोड़ या रखरखाव बतलाये जा सकते हैं, जिससे बाधा दूर हो जाती है।

भगवती सूत्र के मांसाहार प्रकरण के बारे में आपने दिगम्बरों के दृष्टिकोण से जो और बातें कहीं हैं उनके आलोक में चिंतन बढ़ाया जा सकता है तथा प्रक्षिप्त वाली बात हो तो शांति से बैठकर ही, एक विद्वान संगोष्ठी समग्र जैन समाज की बिठाकर विचार किया जा सकता है।

'महाशिला अभिलेख पत्रिका' में उद्धृत ताड़पत्रों के सन्दर्भवाला लेख एक सूचनात्मक आलेख है। ताड़पत्र ही क्यों? इस बात का उसमें स्पष्टीकरण भी है। इस बात में शक नहीं कि आप प्रश्न उठाकर, अपनी विचारोत्तेजक टिप्पणियां देकर चैतन्य जगाते हैं।

– राजेन्द्र नगावत, नई दिल्ली

[भाई नगावत जी का यह कथन **अयथार्थ** है कि **भगवती सूत्र** के मांसाहार प्रकरण विषयक हमारा लेख दिगम्बरों के दृष्टिकोण से लिखा गया है। दिगम्बर जैन आम्नाय न तो श्वेताम्बर आम्नाय में संरक्षित एवं मान्य **भगवती सूत्र** को किसी भी प्रकार की मान्यता प्रदान करता है और न ही केवली भगवान का कवलाहार मानता है। लेख में उल्लिखित सभी संत – आ. महाप्रज्ञ, उमेश मुनि तथा 'एक जैन संत' सभी श्वेताम्बर आम्नाय के हैं। – **अजित प्रसाद जैन**]

■ **शोधादर्श** निखर रहा है,
चारों ओर बिखर रहा है।
शोधपरक सामग्री का शिखर रहा है।।
बस **शोधादर्श** तो शोध–आदर्श ही है।
इसलिये निखर रहा है, बिखर रहा है।।

– रामजीत जैन एडवोकेट, ग्वालियर

■ **शोधादर्श** का ताजा अंक मिला। उसमें सार्थक सामग्री देकर आप जैन जगत का बहुत भला कर रहे हैं। बाबूजी की स्वस्थ विरासत को अक्षुण्ण रखने का पुण्य कर रहे हैं आप।

– डॉ. प्रद्युम्न कुमार जैन
'अनंग', रुद्रपुर

■ **शोधादर्श**–४७ में ज्ञानवर्धक, शिक्षाप्रद सुन्दर लेख पढ़कर अत्यंत हर्ष हुआ, शुरू से अंत तक एक साथ पढ़ने को विवश हो गया। सम्पादकीय 'पुरा सम्पदा का संरक्षण', विलक्षण जैन मूर्तियां विषयक आलेख, समाधान मांगते प्रश्न, भगवती सूत्र का मांसाहार प्रकरण आलेख सभी उच्च कोटि के ज्ञानवर्धक एवं शिक्षाप्रद हैं। यह पत्र समाज में घर–घर पहुंचना चाहिये, जिससे जागृति हो।

– डॉ. ताराचंद्र जैन बख्शी, जयपुर

■ शोध–अनुसंधान पत्रिकाओं में **शोधादर्श** का स्थान अनुपम है। शोध–कृतियों का सारांश इस पत्रिका में अधिक से अधिक दृष्टव्य है। शोधार्थियों, अध्येताओं के लिए यह विशेष रूप से उपयोगी और पठनीय है।

– डॉ. रतनलाल जैन, हांसी (हरयाणा)

■ **शोधादर्श**–४७ देखा और पूरा पढ़ गया। बारम्बार पारायण विलक्षण आनन्द देता है। बाबूजी का अतिप्राचीन लेख 'पारनगर का जैन पुरातत्व', सम्पादकीय 'पुरासम्पदा का संरक्षण', डॉ. परमानन्द जड़िया की रचना 'तुम्हीं हो परम मोक्ष के धाम' श्रेष्ठ हैं। समाचार विमर्श, साहित्य सत्कार, समाचार विविधा, अभिनंदन आदि स्थायी स्तम्भ महत्वपूर्ण हैं, इन्हें निरंतर रखिए।

– मोतीलाल 'विजय', कु. रचना, चि. मुकुल, कटनी

■ शोध विषयक छात्र–छात्राओं तथा इतिहास के अध्येताओं की सुरुचिपूर्ण पत्रिका है **'शोधादर्श'**। इसमें प्रायः समस्त रचनाएं अत्यधिक प्रभावी, रोचक एवं ठोस सामग्रीयुक्त रहती है। **– श्रीमती राखी–सुधीर जैन, उज्जैन**

■ **शोधादर्श** कहें या आत्म चिन्तन–मननादर्श कहें, जैन जगत की पत्र–पत्रिकाओं में सर्वोत्कृष्ट एवं शोधपूर्ण, निष्पक्ष विचारधारा की पत्रिका है। **शोधादर्श**–४७ विशेष पठनीय, चिन्तनीय एवं संग्रहणीय है। श्री रमाकान्त जैन का 'गुरुगुण–कीर्तन', 'डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का 'पारनगर का जैन पुरातत्व', डॉ. कपूरचंद जैन का कवि संतलाल के श्री सिद्धचक्र विधान सम्बंधी आलेख, डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल का भगवान पार्श्वनाथ विषक लेख और डा. परमानंद जड़िया की रचना उल्लेखनीय हैं। पत्रिका स्वयं में आगम रूप है।

– पं. सरमनलाल जैन 'दिवाकर', शास्त्री, हस्तिनापुर

■ **शोधादर्श**–४७ में अनेक लेख महत्वपूर्ण हैं। साहू शैलेन्द्र कुमार जैन का 'स्वास्थ्य के बारे में कुछ बातें' लेख पढ़कर चिरौंजी के दाने चबाने से मुझे बहुत लाभ हुआ है। मैंने अन्य लोगों को भी दमा रोग और सांस फूलने की यह अचूक औषधि बताई है। लेखक को हार्दिक धन्यवाद !

'समाधान मांगते प्रश्न' विमर्श भी भ्रांतिनिर्मूलक है। 'पारनगर का जैन पुरातत्व' शोधकर्ताओं के लिये उपयागी है। 'समाचार विमर्श' द्वारा पाठकों को वर्तमान सामाजिक गतिविधियों से अवगत कराया गया है। पत्रिका निरन्तर प्रगतिशील है। **– डॉ. जयकृष्ण प्रसाद खण्डेलवाल, आगरा**

■ **शोधादर्श**–४७ प्राप्त होते ही आद्योपान्त पढ़ा। सभी लेख पूर्ववत पठनीय, विचारणीय और मननीय हैं। भाई रमाकांत ने पं. टोडरमल जी की बाबत सारभूत जानकारी दी है। उनकी क्षणिकाओं में सत्यता रहती है। आपका सम्पादकीय और आपके अन्य लेख निर्भीकता से सत्य को उजागर करने वाले और प्रभावी हैं। डॉ. ज्योति प्रसाद जी का लेख खोजपूर्ण है। डॉ. शशिकांत जी के लेख में उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति के दर्शन होते हैं। डॉ. कपूरचंद का कविवर संतलाल पर, डॉ. राजेन्द्र बंसल का भगवान पार्श्वनाथ पर तथा डॉ. सूरजमुखी का भगवान महावीर के अहिंसा संदेश पर आलेख ज्ञानवर्द्धक और रोचक हैं। 'साहित्य सत्कार' के अंतर्गत ग्रन्थ–समीक्षा सुचारू हुई है। अपने आलोचकों के भी पत्र छापकर आपने स्वस्थ परम्परा कायम की है।

– महावीर प्रसाद जैन सर्राफ, शाकाहार प्रचारक, दिल्ली

■ **शोधादर्श**–४७ में स्व. बाबूजी (डॉ. ज्योति प्रसाद जी) का शोधांक अगस्त १९६६ का लेख, सम्पादकीय 'पुरासम्पदा का संरक्षण' तथा डॉ. शशिकांत का आलेख उल्लेखनीय हैं।

श्री रमाकान्त के पं. टोडरमल विषयक लेख के प्रसंग में कुछ जानकारियां देना चाहता हूँ। **पं. टोडरमल के गुरु पं. वंशीधर भट्टारक कटरा जैन मंदिर मैनपुरी थे। पं. टोडरमल का यौवन आगरा में व्यतीत हुआ। अलीगंज में प्रायः उनकी गोष्ठी पंडितों के मध्य हुआ करती थी।** मैनपुरी में भट्टारकपीठ थी और पिछले ५०० वर्ष का इतिहास वहां उपलब्ध है। ब्र. रायमल्ल अलीगंज में रहते थे। उनके द्वारा रचित अनेक ग्रंथ अलीगंज–मैनपुरी में मिलते हैं।

– डॉ. अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर

(डॉ. अभय प्रकाश जी द्वारा प्रदत्त जानकारी के लिये उनका आभार व्यक्त करते हुए उसके ऊपर रेखांकित अंश के सम्बंध में पुष्ट प्रमाण उपलब्ध कराने का उनसे अनुरोध किया गया है क्योंकि ब्र. रायमल ने अपनी 'जीवन पत्रिका' में जैपुर के साहूकार–पुत्र टोडरमल्ल के विशेष ज्ञान की ख्याति सुन उनसे मिलने जैपुर नगर जाने और उनके वहां न मिलने पर किंचित् संजम–धारक, विशेष व्याकरणादि जैन मत के शास्त्रों के पाठी, सौ–पचास लड़कों को व्याकरण, छंद, अलंकार,

काव्य चरचा पढ़ाने वाले बंसीधर से मिलने का उल्लेख किया है। उन्होंने वहां से आगरा लौट आने और पुनः जैपुर जाने तथा तदनन्तर सेखावटी विसै में सिंघाड़ा नगर में दिल्ली के एक बड़े साधर्मी साहूकार के पास कार्यरत टोडरमल्ल से भेंट करने और अपने शंका–समाधान करने की बात लिखी है। यदि पं. टोडरमल जी के गुरु कटरा मैनपुरी के भट्टारक बंशीधर थे तो अलीगंज (एटा) निवासी ब्र. रायमल ने उनसे जयपुर में भेंट होने की बात क्यों लिखी और यदि पं. टोडरमल का यौवन आगरा में व्यतीत हुआ था और उनकी गोष्ठी पंडितों के मध्य अलीगंज में प्रायः हुआ करती थी, तो उनसे भेंट करने जयपुर और सिंघाड़ा जाने की आवश्यकता ब्र. रायमल जी को क्यों पड़ी, इनका समाधान अपेक्षित है। – **रमा कान्त जैन**)

■ अंक सैतालिस शोधादर्श
प्राप्त हुआ ले शोकादर्श
पुत्र वियोगी ए. पी. जैन
पढ़कर हृदय हुआ बेचैन
निर्मम असमय वज्राघात
दो–दो पुत्रों का आघात
असहनीय है सहना दुष्कर
मिलते नहीं सांत्वना के स्वर।।
रमाकान्त का योग विशेष
टोडरमल पर उनका लेख
उनकी कृतियों को दर्शाता
नई जानकारी है लाता
उनकी कविताएं क्षणिकाएं
छिपी व्यंग्य में सुन्दरताएं।।

'पुरा सम्पदा' पर अभिलेख
ए.पी. जैन की शोध विशेष
'मांसाहार' व 'श्रावकाचार'
हमने पढ़ा मुदित साभार।।
जैन मूर्तियां परम विलक्षण
रुचिकर शशीकांत का वर्णन।
तुम्हीं हो परम मोक्ष के धाम
जड़िया जी की कविता अभिराम
अर्जुन माली नाट्य प्रधान
सुधा जिन्दल ने भर दी जान।
अन्य लेख आदि भी महिमावान
देते हमको रोचक ज्ञान।।
जितने भी स्तंभ विशेष
है उनका व्यापक परिवेश
देते हमें चतुर्दिक ज्ञान
बनता शोधादर्श महान।।

– डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशांत, डी–११/६, राजेन्द्र नगर, लखनऊ

■ **शोधादर्श**अंक ४७ श्रेष्ठ है। सम्पादकीय में समय की चेतावनी छिपी हुई है, सराहनीय साहस है। रोग का निदान हो गया है तो इलाज भी बताना चाहिये। **शोधादर्श** समय की समाचारवाहक पत्रिका ही नहीं, सतत नई है, संग्रहणीय एवं अध्ययन करते रहने की निधि है। **→ मूलचंद जैन, हरदा**

■ **शोधादर्श** ४७ अंक सुरुचिपूर्ण सुन्दर पठनीय सामग्री से पूर्ण है। पंडित टोडरमल संबंधी विस्तृत जानकारी ज्ञानवर्द्धक है। 'पुरा सम्पदा का संरक्षण' सम्पादकीय चिन्तन व मनन का विषय है। 'कविवर सन्तलाल और उनका सिद्धचक्र विधान', 'महावीर का अहिंसा संदेश', 'भगवती सूत्र का मांसाहार प्रकरण' लेख बहुत कुछ सोचने, समझने को बाध्य करते हैं। डॉ. परमानंद जड़िया की कविता सुन्दर विचारों से पूर्ण होकर प्रेरणास्पद है। 'समाधान मांगते प्रश्न','स्वास्थ्य के बारे में कुछ बातें' अनुभवभवजन्य हैं। 'साहित्य सत्कार', 'समाचार विमर्श', 'श्रावकाचार संगोष्ठी' आदि में संयोजित जानकारी एवं मूल्यांकन ध्यान देने योग्य हैं। **— मदनमोहन वर्मा, ग्वालियर**

■ **शोधादर्श** ४७ अंक अपने उच्च स्तर का प्रतिनिधि अंक है। ८६ पृष्ठों की पत्रिका में बहुआयामी विपुल सामग्री बुद्धिमत्तापूर्ण संयोजित की गयी है। समाज एवं श्रमण संस्कृति में नित–नवीन उपजने वाली विकृतियों का सटीक चित्रण **शोधादर्श** में सहज ही उपलब्ध हो जाता है। सम्पादक जी की दृष्टि पैनी है और कुछ भी अछूता नहीं रहता। डॉ. ज्योति प्रसाद जी का 'पारनगर का जैन पुरातत्व' आलेख और सम्पादकीय 'पुरासम्पदा का संरक्षण' एक दूसरे के पूरक हैं। डाक्टर साहब का यह कथन हृदय को छू गया, ''जैनों की विपुल पुरातात्विक सामग्री का विनाश अजैन विद्वानों की अनभिज्ञता या उपेक्षा के कारण शायद उतना नहीं हुआ जितना कि स्वयं जैनों के प्रमाद और मूर्खता के कारण हुआ है।''

— डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

■**शोधादर्श** जुलाई २००२ में 'समाधान मांगते प्रश्न' स्तम्भ के अन्तर्गत द्यानतराय कृत 'दशलक्षण पूजा' के सन्दर्भ में आदरणीय जस्टिस एम. एल. जैन के निर्भीक एवं तथ्यपरक समाधान ने एक दीर्घ अवधि से मस्तिष्क में उमड़ती–घुमड़ती विचारों की आंधी को थाम लिया है। ब्रह्मचर्य धर्म के अर्थ में कवि ने जिन कटु शब्दों में नारी निन्दा की है उसे दृढ़ धार्मिक आस्था होते हुए भी मैं कभी पचा नहीं पाई। हृदय में एक गहरा आक्रोश क्षोभ पलता रहा। जस्टिस जैन ने इस नारी निन्दा की स्पष्ट शब्दों में आलोचना करते हुए इसे ब्राह्मण धर्म के प्रभाव की परिणति स्वीकार कर, यथार्थ का जो उद्घाटन किया है उसके लिये मैं स्त्री–समाज की ओर से आभार प्रकट करती हूँ। ऐसी स्पष्टवादिता के लिये बहुत बड़े नैतिक साहस की आवश्यकता होती है, इस साहस का परिचय देने हेतु जस्टिस साहब बधाई के पात्र हैं ! **— डॉ. कु. मालती जैन, मैनपुरी**

■**शोधादर्श**– ४७ पूरा अंक संग्रहणीय है, जैनत्व ही पहचान है। आपका सम्पादकीय लेख 'पुरा सम्पदा का संरक्षण' सामयिक है, ज्वलन्त समस्या प्रधान

है। भाषा समिति के धारक हमारे मुनिराज क्या डंडिया जी व जैन संस्कृति रक्षा मंच वालों के प्रति अति निन्दनीय व अपमानजनक शब्दों का प्रयोग कर भाषा समिति को नई व्याख्या प्रदान कर रहे हैं ? 'समाचार विमर्श' सदा की भांति दिल दहलाने वाला था। किसी मुनि का भट्टारक बनना चिन्तनीय है। समाज के जिम्मेदार लोग चुप्पी साधे अनजान बने क्यों बैठे हैं? **शोधादर्श** इस ओर अच्छी कलम चला रहा है....।

– पं. सुनील जैन 'संचय' शास्त्री, नरवा (सागर)

■ 'शोधादर्श' अंक सैंतालिस,
अति सुन्दर, मन भाया।
'सच्चे कलाकार का दर्शन',
'रमाकान्त' से पाया।।
सौम्य विलक्षण जैन मूर्तियों–
का परिचय करवाता।
लेख डाक्टर 'शशी कान्त' का,
ज्ञान वृद्धि का दाता।।
'पुरा सम्पदा संरक्षण हो',
सम्पादक बतलाते।
'अर्जुनमाली' नाटक भी हम
आगे बढ़ता पाते।।
'कविवर सन्तलाल का परिचय'
उत्तम लेख दिखाता।
सम्पादक के पुत्र–निधन का–
समाचार दुख–दाता।।
श्री 'शैलेन्द्र कुमार जैन' जी
बात स्वास्थ्य की करते,
'डॉ. जड़िया' निज कविता में,
सत्य सामने धरते।।
पुस्तक परिचय, समाचार,
सब सुन्दर पड़े दिखाई।
दयानन्द जड़िया 'अबोध' की
शत–शत बार बधाई।।

– दयानन्द जड़िया 'अबोध'
लखनऊ

———

छपते छपते–

एक और आघात

६ दिसम्बर को मेरठ में तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र. के महामंत्री श्री अजित प्रसाद जैन के द्वितीय भानजे सरल स्वभावी ६१ वर्षीय **श्री अभय कुमार जैन** का लम्बी असाध्य बीमारी के उपरान्त प्राणान्त हो गया।

अभी तीन मास पूर्व ही ज्येष्ठ पुत्र के निधन के वज्रपात से उभर नहीं पाये श्री अजित प्रसाद जी को अपने भानजे की मृत्यु का यह आघात सहना पड़ा है। **शोधादर्श** परिवार दिवंगत की आत्मा की शान्ति और सद्गति की तथा सभी स्वजनों को यह आघात समतापूर्वक सहन करने की प्रार्थना करता है।

– रमा कान्त जैन

अनुक्रमणिका

शोधादर्श ४३–४८

शोधादर्श ४२ में पृष्ठ ३४१–३८६ पर **शोधादर्श** १–४२ में प्रकाशित लेखों आदि की अनुक्रमणिका दी गई है। अब उसके आगे **शोधादर्श** ४३–४८ में प्रकाशित लेखों आदि की अनुक्रमणिका दी जा रही है।

खण्ड–क : लेखक वृन्द

नाम लेखक	लेखन शीर्षक	अंक	पृष्ठ
१. श्री अंशु जैन 'अमर'	१. स्मृतियों में हो बने	४३	४३
	२. जन्म जयन्ती इतिहास मनीषी की	४६	५५
	३. स्मृति दिवस	४७	७१
२. श्री अगरचन्द नाहटा	४. भगवान महावीर चित्रावली	४५	२७–२६
३. साध्वी अणिमाश्री	५. समत्व स्रष्टा भगवान महावीर	४३	२४
४. श्री आदित्य जैन	६. समाधान मांगते प्रश्न : समाधान	४६	५३
५. डॉ. आर. टी. सांवलिया	७. जैन धर्म का मूल तत्व 'अहिंसा'	४६	२६–३२
६. डॉ. ऋषभचंद्र जैन फौजदार	८. भगवान महावीर का जन्म स्थान	४६	१८–२३
७. जस्टिस एम.एल. (मांगी लाल) जैन	६. कटोरी सीधी या उल्टी	४३	३६–४०
	१०. समय शाह	४४	४६–५३
	११. समाधान मांगते प्रश्न : समाधान	४५	५५–५८
	– तदैव –	४६	४८–५३
	– तदैव –	४७	३६–४०
	१२. मंगल श्लोक पर एक विचार	४८	४४
८. डॉ. कपूरचंद जैन	१३. कविवर सन्तलाल और उनका सिद्धचक्र विधान	४७	१३–१५

६. श्री काका कालेलकर	१४. महावीर का धर्म	४५	१६–२५
१०. डॉ. कामता प्रसाद जैन	१५. तीर्थंकर महावीर के पुण्यमयी वचन का प्रतिरूप	४५	१६–१७
११. प्रो. कृष्णदत्त बाजपेयी	१६. भगवान महावीर विषयक पुरातत्वीय प्रमाण	४५	३०–३३
१२. श्री कैलाश भूषण जिन्दल	१७. जैन धर्म	४६	३८–४०
१३. डॉ. गुलाबचंद्र जैन	१८. जैन मूर्तिकला और कुछ विशिष्ट जैन प्रतिमाएं	४५	५१–५४
१४. डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा	१९. महावीर जयंती कार्यक्रम : इसकी सार्थकता कैसे हो?	४४	३४–३६
१५. डॉ. ज्योति जैन	२०. अतीत और वर्तमान में जैन पत्र–पत्रिकायें	४३	३४–३५
१६. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	२१. Life of Lord Mahavira	४३	८–११
	२२. जीयात् श्री वीरनाथस्य शासनम्	४४	७–११
	२३. बुद्धघोष वर्णित महावीरकालीन इतिहास : कुछ रोचक तथ्य	४५	८–११
	२४. Impact of Ahimsa on Human Affairs	४६	७–११
	२५. पारनगर का जैन पुरातत्व	४७	७–८
	२६. मथुरा की नैगमेश मूर्तियां और कृष्ण जन्म	४८	७–१०
१७. श्री जमनालाल जैन	२७. समाधान मांगते प्रश्न : प्रश्न	४५	५५–५८
	–तदैव–	४६	४८–५२
	२८. महावीर : कितने ज्ञात, कितने अज्ञात	४६	२५–२६
	२९. हमारी दुर्बलता और हीनता के कारण	४८	१८–२३
१८. पं. जुगल किशोर मुख्तार 'युगवीर'	३०. महावीर–संदेश (पद्य)	४४	१६

१६. आचार्य श्री तुलसी	३१. यदि महावीर तीर्थंकर नहीं होते	४३	२०
२०. श्री दुलीचंद जैन	३२. आधुनिक विश्व में हिंसा की प्रासंगिकता	४५	४३–४७
२१. श्री धन्य कुमार जैन	३३. मोक्ष नरक–क्या और कहाँ	४३	४१–४२
	३४. जैन दर्शन और शास्त्र	४५	६२
२२. डॉ. धर्मचंद	३५. महावीर जीवन दर्शन : एक मूल्यांकन	४४	२५
२३. डॉ. निजामुद्दीन	३६. महावीर का अपरिग्रह कितना ग्राह्य?	४५	२३–२५
२४. श्री नीरज जैन	३७. अपनी पुरा–सम्पदा की सार–सम्हाल कैसे करें	४३	३१–३३
२५. डॉ. नेमीचंद जैन	३८. वंदना : हिंसा की अहिंसा को	४५	३७–३८
२६. डॉ. परमानन्द जड़िया	३९. तीर्थंकर महावीर (पद्य)	४४	३७
	४०. विस्मृत हो रहा महावीर का पावन संदेश (पद्य)	४५	२२
	४१. तुम्हीं हो परम मोक्ष के धाम (पद्य)	४७	३२
२७. डॉ. प्रभाकर माचवे	४२. वर्तमान युग में महावीर के उपदेशों की सार्थकता	४४	२७–२८
२८. श्री फूलचंद्र जैन 'पुष्पेन्दु' (लखनऊ)	४३. महावीर संदेश (पद्य)	४३	७०
२९. डॉ. बी. रमेश कुमार गादिया	४४. शोधसार: मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर जैन दर्शन का प्रभाव	४५	४८–५०
३०. पं. बेचरदास दोशी	४५. श्रमण भगवान महावीर	४५	१८
३१. समणी मंगलप्रज्ञा	४६. कर्मफल भोग : एक समीक्षा	४८	२४–२८
३२. साध्वी श्री मंजुला	४७. क्रान्त दृष्टा : भगवान महावीर	४५	२६
३३. मुनि मणिप्रभसागर जी	४८. महावीर काल के विभिन्न सम्प्रदाय	४४	२९–३३

३४. श्री मनोज कुमार जैन 'निर्लिप्त'	४६. समाधान मांगते प्रश्न : परिभाषा व जिज्ञासा	४७	३६
३५. श्री मफतलाल मेहता 'मफतकाका'	५०. पुण्यानुबंधी पुण्य	४८	२६–३२
३६. डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त'	५१. महावीर–वैराग्य (पद्य)	४४	३८
	५२. है महावीर जिसने अपना मन जीता है (पद्य)	४५	३६
	५३. तीर्थंकर श्री महावीर का शत शत वंदन है (पद्य)	४६	२८
३७. डॉ. महेन्द्र सागर प्रचंडिया	५४. महावीर जन्माष्टक (पद्य)	४६	२७
	५५. आध्यात्मिक गीत (पद्य)	४८	४६
३८. आचार्य रजनीश	५६. महावीर और मूक जगत	४३	२२
३६. डॉ. (श्रीमती) राका जैन	५७ समीक्षा : युग–युग में जैन धर्म	४७	५७–५८
४०. मुनि श्री राकेश कुमार	५८. भगवान महावीर – जीवन और दर्शन	४३	२३
४१. डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल	५६. शुद्धाम्नाय : स्वरूप और उत्पत्ति	४६	३३–३७
	६०. निर्वैर एवं क्षमा के प्रतीक : भगवान पार्श्वनाथ	४७	१६–१६
४२. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन	६१. महापुरुष महावीर	४३	२१
४३. पद्मश्री रामनारायण उपाध्याय	६२. अहिंसा के मूर्तस्वरूप	४४	२६
४४. महापण्डित राहुल सांकृत्यायन	६३. घुमक्कड़राज महावीर	४३	७
४५. श्री रिषभदास रांका	६४. महावीर का धर्म–जन धर्म	४३	२६
४६. श्री लालचंद जैन	६५. समाधान मांगते प्रश्नः प्रश्न	४५	५८
	– तदैव –	४७	४०
४७. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल	६६. भगवान महावीर	४३	२५

४८. आचार्य श्री विद्यानंद मुनि	६७. तीर्थंकर महावीर	४३	१८–१९
४९. संत विनोबा भावे	६८. महावीर की विशेषता	४३	२१
५०. श्री विष्णुदत्त शर्मा	६९. ज्योतिर्मय ज्योति प्रसाद (पद्य)	४३	५३
५१. डॉ. शशिकांत	७०. वत्स जनपद में महावीर का विहार	४३	२७–२९
	७१. वीर--शासन का जन्म स्थान राजगृह	४४	१७–२४
	७२. महामानव महावीर	४५	३४–३६
	७३. श्रमण एवं ब्राह्मण	४६	२४
	७४. कतिपय विलक्षण जैन मूर्तियां	४७	११–१२
	७५. भक्तामर स्तोत्र	४८	३३–३४
	७६. समीक्षा : Apta-Mimansa of Acharya Samantabhadra (S.C. Ghoshal)	४६	७६
	७७ समीक्षा: Facets of Jainology (Dr. V.A. Sangave)	४७	५६–५७
५२. श्री शांति लाल के. शहा	७८. भगवान महावीर के चरणों में (पद्य)	४८	४८
५३. साहू शैलेन्द्र कुमार जैन	७९. स्वास्थ्य के बारे में कुछ बातें	४७	४६–४७
५४. डॉ. श्रेयांस कुमार जैन	८०. परिग्रहवान मुनि मोक्षमार्गी नहीं	४४	३६–४४
५५. श्रीमती सीमा जैन	८१. ज्योति अमर रहे	४४	६०
५६. श्री सुखमाल चंद जैन	८२. धर्म का विकृत रूप	४३	४१
	८३. अमृत मंथन	४८	४३–४४
५७. गणधर सुधर्मा स्वामी	८४. महावीरत्थुई	४६	१–६
५८. श्रीमती सुधा जिन्दल	८५. अर्जुन माली (नाटिका)	४६	४३–४७
	– तदैव –	४७	३३–३५
	– तदैव –	४८	४५–४७

५६. डॉ. (श्रीमती) सूरजमुखी जैन	८६. परिग्रह परिमाण व्रत– आज के संदर्भ में	४४	४५–४८
	८७. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भगवान महावीर का अहिंसा संदेश	४७	२०–२२
६०. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी	८८. आत्मजयी भगवान महावीर	४५	२०–२२
६१. श्री हजारीलाल जैन 'काका'	८९. अहिंसा (पद्य)	४३	१६
६२. श्री हीरालाल 'कौशल'	९०. कहानी महावीर भगवान की (पद्य)	४३	३०

खण्ड ख : सम्पादक मण्डल

१. श्री अजित प्रसाद जैन, प्रधान सम्पादक

(अ) सम्पादकीय अग्रलेख :

२६.	२६००वां वीर जयन्ति महोत्सव वर्ष	४३	१२–१७
२७.	जयति श्रुत देवता	४४	१२–१५
२८.	यह कैसा अहिंसा वर्ष?	४५	१२–१५
२९.	अहिंसा शिखर सम्मेलन–दीक्षा कल्याणक	४६	१२–१३
३०.	पुरा सम्पदा का संरक्षण	४७	६–१०
३१.	मंगलं पुष्पदंताद्यो, जैनधर्मोस्तु मंगलम्	४८	११–१७

(आ) अन्य लेख–आदि

४७.	निर्वाण महोत्सव एवं श्रद्धांञ्जलि पर्व–दीपावली	४५	४०–४२
४८.	The Archaeology of Faith-Lord Rishabhdeo	४६	४१–४२
४९.	भगवती सूत्र का मांसाहार प्रकरण–एक मीमांसा	४७	२३–३१
५०.	श्रावकाचार संगोष्ठी	४७	४१–४५
५१.	वीर–जन्मस्थली कुण्डलपुर प्रकरण– एक विश्लेषण	४८	३५–४२

(इ) तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.

१८.	प्रगति प्रतिवेदन वर्ष २०००–२००१	४५	६३–६५
१९.	प्रगति प्रतिवेदन वर्ष २००१–२००२	४८	५१–५४

(ई) समाचार विमर्श

११२.	धर्म संसद में गणिनी आर्यिका ज्ञानमती जी	४३	४६–४७
११३.	एक और नई भट्टारक पीठ का सृजन	४३	४८
११४.	प्रलयंकारी भूकम्प	४३	४९–५१
११५.	दस माह के पुत्र को दीक्षा हेतु अर्पण	४३	५२–५३
११६.	ऐसा तो होना ही था	४४	६२–६३
११७.	शास्त्रि परिषद का अधिवेशन	४४	६४–६५
११८.	सरकारी समारोह–कितनी प्रभावना, कितनी अवमानना	४४	६६–६७
११९.	शिखर जी पहाड़ पर डकैतों द्वारा लूटपाट	४५	७४–७५
१२०.	महासभा ने महत्वपूर्ण निर्णय लिये	४५	७५–७६
१२१.	तीर्थंकर वाटिका	४५	७७
१२२.	आचार्य प्रतिमाओं की स्थापना	४५	७७–७८
१२३.	१०० करोड़ का आबंटन	४६	५८–५९
१२४.	विद्वत् परिषद द्वय के चुनाव	४६	५९–६१
१२५.	और अब तीसरी विद्वत् परिषद भी	४६	६१
१२६.	भगवान महावीर की जन्मभूमि–कुण्डलपुर : शास्त्रि परिषद का प्रस्ताव	४६	६१–६२
१२७.	मुनि श्री को राजकीय अतिथि का दर्जा	४६	६२
१२८.	वर्तमान बुद्धिजीवीफोरम	४७	५९
१२९.	गुजरात का नरसंहार	४७	५९–६०
१३०.	अहिंसा वर्ष समापन के उपहार (?) : ललित जैन की हत्या घाटकोपर (मुंबई)– राख और एक सारिका की	४७	६०–६१
१३१.	इस युग में भी–ताड़पत्रों पर शास्त्र आलेखन	४७	६१–६३
१३२.	एक और गणधर हुए	४७	६३–६४
१३३.	भाषा समिति	४७	६४
१३४.	मुनि श्री की भट्टारक पद–स्थापना	४७	६५–६७
१३५.	शाकाहार प्रचार– कितना सार्थक	४७	६८–७०
१३६.	महासभा अधिवेशन	४८	५५–५६

१३७.	लब्धि समारोह	४८	५६–५८

(उ) चिन्तन कण

१.	अपनी परम्पराओं को न भूलें	४४	५४–५६
२.	समवशरण	४४	५६–५७
३.	जन्म नगरी कुण्डलपुर	४४	५८–५९
४.	सही निर्वाण–स्थली पावा कहाँ ?	४५	६०–६१

(ऊ) साहित्य परिचय/समीक्षा

४३ (६२–६४); ४४ (७०–७४); ४५ (६६–७१); ४६ (६५–७०); ४७ (४६–५६); ४८ (५६–६२)

(ए) विविध संकलन

जिनवाणी	४३ (११, ४०, ४२, ४५, ४८); ४६ (३२, ५४); ४७ (१२, ३१); ४८ (३२)
देवि वागीश्वरि स्तुति	४४ (१६);
महावीर वाणी	४४ (३३); ४६ (२३)
अमर वाणी	४४ (४८)
दहेज (युवा मुनि तरुण सागर)	४७ (४५)
तंत्र–मंत्र–यंत्र (श्री श्रेयांस मुनिराज)	४८ (२८)
चिन्तन ओशो रजनीश का	४८ (४२)

[ऊपर (अ) से (ई) स्तम्भ के अंतर्गत प्रदर्शित क्रमांक अंक ४२ में दी गई अनुक्रमणिका के क्रमांकों के अनुक्रम में हैं और स्तम्भ (ऊ) और (ए) में अंक के आगे कोष्ठक में पृष्ठ संख्या इंगित है।]

२. श्री रमाकान्त जैन, सह–सम्पादक

	(अ) लेख आदि	अंक	पृष्ठ
१०.	स्व. डॉ. कामता प्रसाद जैन की जन्म शती	४४	(८५)
११.	श्री भगवान महावीन का १६२ वर्ष पुराना सिक्का	४५	(३३)
१२.	सिरि भूवलय	४५	(५०)
१३.	पंडित–कवि आशाधर	४६	(१४–१७)
१४.	ईस्ट इंडिया कम्पनी के सिक्के	४६	(६३–६४)
१५.	कुम्मापुत्तचरिअम्	४७	(४८ व ८६)
१६.	अनभ्र वज्रपात	४७	(८७)

(आ) पद्य रचनायें

अलविदा	४३	(८६)
सच्चे कलाकार का दर्शन	४७	(८)
सामयिक परिदृश्य : क्षणिकाएं	४३ (४४–४५); ४४ (६१); ४५ (५६); ४६ (१३); ४७ (८); ४८ (५०)	

(इ) गुरुगुण–कीर्तन

३६.	वर्द्धमान महावीर (२६००वीं जन्म जयन्ती पर)	४३	(१–७)
३७.	वर्द्धमान महावीर (वीर शासन जयन्ती पर)	४४	(१–६)
३८.	वर्द्धमान महावीर (महावीर निर्वाण पर)	४५	(१–७)
३९.	पंडित टोडरमल	४७	(१–६)
४०.	कविवर बनारसीदास	४८	(१–६)

(ऊ) विविध स्तम्भ

४. समाचार विविधा : ४३ (५४–६१); ४४ (६८–६६); ४५ (७८–७६); ४६ (५६–५७); ४७ (७२–७३); ४८ (६७)

५. अभिनंदन–शोध की सफलता आदि : ४३ (७१–७२); ४४ (७७–७८); ४५ (८०); ४६ (७७–७८); ४७ (७४–७७); ४८ (६८–६६)

६. शोक संवेदन : ४३ (७६); ४४ (८५); ४५ (८१); ४६ (७६); ४७ (७८); ४८ (७०)

७. आभार : ४३ (८६); ४४ (८५); ४५ (८१); ४६ (७६); ४६ (७८); ४८ (६६)

८. शोधादर्श : पाठकों की दृष्टि में –पारखी पाठकों के १४७ पत्र : ४३ (७४–७६); ४४ (७६–८४); ४५ (८२–८६); ४६ (८१–८६); ४७ (७८–८६); ४८ (७१–७७)

(ऐ) साहित्य परिचय / समीक्षा

४३ (६५–७०); ४४ (७४–७६); ४५ (७१–७३); ४६ (७०–७६); ४७ (५७); ४८ (६२–६६)

(ओ) विविध संकलन

वर्द्धमान महावीर के जीवन–पथ के दीप स्तम्भ	४५	(३८)
विशिष्ट व्यक्तियों की दृष्टि में महावीर	४४	(११, २८)
महावीर वाणी	४५	(१५, १७, २६)
सागार धर्मामृत से	४६	(१७)
अनुक्रमणिका : शोधादर्श ४३–४८	४८	(७८–८६)

———

आवश्यक सूचना

इस वर्ष का वार्षिक शुल्क ५० रु. (पचास रुपये), यदि अभी नहीं भेजा हो, तो कृपया मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६ ००४', को शीघ्र ही भेजने का अनुग्रह करें। चेक लखनऊ के ही स्वीकार होंगे। एक प्रति का मूल्य २० रु. (बीस रुपये) है।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिएं। यथासंभव लेख ३-४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। **लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।**

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की **दो प्रतियां** भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों /न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

- प्रधान सम्पादक

❑ ❑ ❑